प्रकाशक

चांदमल सीपाणी

मंत्री,

श्री जिनदत्तसूरि मण्डल,
दादावाड़ी, अजमेर (राजस्थान)

मई, १९७४
प्रति १०००
मूल्य ४.००

पुस्तक प्राप्ति स्थान

१. मंगल स्वाध्याय मंदिर
ठि० ९/१० कुंज सोसायटी
अलकापुरी, बड़ौदा (गुजरात)

२. सरस्वती पुस्तक भण्डार
रतनपोल, हाथीखाना,
अहमदाबाद नं. १

३. सोमचंद डी. शाह पालीताणा
(सौराष्ट्र)

४. जैन भवन
P–२५, कलाकार स्ट्रीट,
कलकत्ता

५. श्री जैन श्वेताम्बर सेवा समिति
१३, नारायण प्रसाद बाबू लेन
कलकत्ता–७

६. मा० सेवंतीलाल वी० जैन
२०, महाजन गली, पहला माला
जवेरी बाजार, बम्बई २

मुद्रक
शिरीशचंद्र शिवहरे
दी फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस,
अजमेर

अनुक्रम

प्रास्ताविकम्

परमेष्ठि नमस्कार नामक इस पुस्तक मे नमस्कार सम्बन्धी कितने ही महत्वपूर्ण विचारो का सग्रह है। पच परमेष्ठि नमस्कार श्री जैन शासन का अनमोल रत्न है। घर मे आग लगने के समय जिस प्रकार बुद्धिमान मनुष्य अन्य सभी वस्तुओ का त्याग कर समस्त आपत्तियो को पार लगाने मे समर्थ एक ही महारत्न को ग्रहण करता है वैसे ही शास्त्रानुसार धीर बुद्धि वाले एव उत्तम लेश्यावाले सात्विक पुरुष सर्वनाश के समय अनन्य शरण्य द्वादशाग के रहस्य-भूत एक ही परमेष्ठि नमस्कार रूप महारत्न को ग्रहण करते है। परमेष्ठि नमस्कार रूप भावरत्न का मूल्य समझना बहुत कठिन है। इसको समझने के लिए जितना विचार किया जाय एव लिखा जाय उतना कम है। केवल शब्दो एव विचारो द्वारा ही उसका मूल्याकन करना दुष्कर है। इसका मूल्य समझने के लिए शास्त्र-कार भगवन्तो को भी उपमाओ एव रूपको का आश्रय लेना पडा है। पाप रूपी पर्वत को भेदने के लिए वज्रसमान, कर्म रूपी वन को जलाने के लिए दावानल के समान, दु ख रूपी बादलो को बिखेरने के प्रचण्ड पवन के समान, मोह रूपी दावानल को शान्त करने के लिए नवीन मेघो के समान, अज्ञानरूपी अधकार को टालने के लिए मध्याह्न के सूर्य के समान, कल्याणरूपी कल्पबेलि के अवन्ध्य बीज के समान, दारिद्र रूपी कद को जडमूल से उखाडने के लिए वराह की दाढ के समान, सम्यक्त्व रूपी रत्न के उत्पन्न होने के लिए रोहणा-चल को धरती के समान आदि अनेक उपमाओ द्वारा शास्त्रकारो ने परमेष्ठि नमस्कार का बखान किया है। यहाँ उसे ही पहचानने का प्रयास किया गया है। श्री नवकारफल प्रकरण मे कहा है कि :

किं एस महारयण, किं वा चितामणिव्व नवकारो।
किं कप्पदुमसरिसो, नहु नहु ताण वि अहिययरो ॥१॥

अर्थ क्या परमेष्ठि नमस्कार महारत्न है ? अथवा यह चिन्ता-मणि रत्न के समान है ? अथवा कल्पवृक्ष के समान है ? नही २ यह तो

सर्वोपरि है। चिन्तामणिरत्न एव कल्पतरु आदि एक ही जन्म में सुख प्रदान कर सकते है परन्तु श्रेष्ठ परमेष्ठि नमस्कार तो स्वर्गापवर्ग को भी प्रदान करने वाला है।

रूपको एव उपमाओ द्वारा परमेष्ठि नमस्कार की महिमा कुछ अश मे बुद्धिगम्य होती है तो भी उसकी खरी महिमा समझने के लिए एकमात्र साधन उसकी विधियुक्त अखण्ड आराधना है। श्री महानिशीथ सूत्र मे उस विधि को वताते हुए कहा है कि

तिविहकरणोवउत्तो, खणे-खणे सीलसजमुज्जुत्तो
अविराहिअवयनियमो, सो वि हु अइरेण सिज्झेज्जा ॥१॥

अर्थ तीनो करणो से उपयोग युक्त वन, प्रतिक्षण शील एव सयम मे उद्यमशील रहकर तथा व्रत एव नियमो का अखण्ड पालन कर जो तीर्थकरो का नाम-ग्रहण करता है वह जीव अल्पकाल मे ही सिद्धगति प्राप्त कर लेता है।

परमेष्ठि नमस्कार का विशुद्ध प्रभाव उसकी साधना से प्राप्त होता है फिर भी उस साधना मे उत्साहित होने के लिए उसके शाब्दिक परिचय की आवश्यकता रहती है। उस हेतु उपमाओ, रूपको एवं अलकारो की भी आवश्यकता रहती है। ये समस्त वस्तुएँ विचार शक्ति को प्रेरित करती है। शास्त्रो मे उसे अनुप्रेक्षा-स्वाध्याय नाम से अभिहित किया गया है। अनुप्रेक्षा-स्वाध्याय को रत्नशोधक अनल की उपमा दी गई है। रत्न को प्राप्त हुई अग्नि जिस प्रकार रत्न के मल को भस्मीभूत कर उसे शुद्ध कर देती है वैसे ही आत्मरत्न को प्राप्त हुई अनुप्रेक्षा रूपी अग्नि कर्ममल को भस्म कर आत्मशुद्धि को पैदा करती है। अनुप्रेक्षा विचार स्वरूप है। दृष्ट, श्रुत एव अनुभूत पदार्थों पर पुन पुन विचार चिन्तन करने का नाम ही अनुप्रेक्षा है। इससे ज्ञान परिपक्व होता है एव प्रतीति दृढ होती है। प्रतीति-युक्त दृढ ज्ञान, सवेग एव वैराग्य को वृद्धि करता है एव चित्त-वृत्ति को कैवल्य तथा मोक्ष की ओर अभिमुख करता है।

'परमेष्ठि नमस्कार' की इस अनुप्रेक्षा मे सभी गुण निहित हैं। इससे भी अधिक कुतर्कों से उत्पन्न हुए मिथ्याविचारो को भगा देने

का सामर्थ्य भी उस मे निहित है। अतः इसके पठन, पाठन, श्रवण, मनन, प्रतिपत्ति एव स्वीकार आदि मे मन लीन होता है, उसके जाप, ध्यान आदि मे प्रवृत्ति होती है परिणामस्वरूप स्थिरता आती है एव सिद्धि मिलती है। सिद्धि हेतु स्थिरता चाहिए, स्थिरता के लिए प्रवृत्ति चाहिए एवं प्रवृत्ति हेतु इच्छा की आवश्यकता है। इस इच्छा को पैदा करने का सामर्थ्य अनुप्रेक्षा-स्वाध्याय मे निहित है। एक ही तथ्य का पुन. पुन. शास्त्रानुसारी विचार करने से कुतर्कों का वल घट जाता है तथा इच्छा एव प्रवृत्ति मे प्रतिवधक कुविकल्प शमित हो जाते है। परमेष्ठि-नमस्कार के मूल मे 'गुणराग' निहित है। गुणराग गुणहीन जीवो की उन्नति मे मुख्य हेतु है। जब तक जीव सदोष है तव तक दोपो से मुक्त होने के लिए उनकी पुन पुन. निन्दा एव गर्हा करना आवश्यक है। वैसे ही जब तक जीवो मे गुणो का अभाव है तव तक गुणो की प्राप्ति हेतु गुण स्तुति एवं गुण प्रशसा करना भी उतना ही जरूरी है। दोपो के सेवन मे शास्त्रकार महर्षियो ने जो प्रायश्चित वताया है उससे भी अधिक दोपो का सेवन करने के पश्चात् उनकी निन्दा, गर्हा आलोचना अथवा प्रायश्चित नही करने वाले के दोप बढते ही जाते हैं एव ये दोप अनन्त गुणे भी हो जाते हैं। यही नियम गुणो के विषय मे भी लागू पड़ते है। जीवन मे किसी गुण का नही होना उतना दोपयुक्त नही है जितना कि स्वय के गुण-हीन होने पर भी गुणवान की स्तुति या प्रशसा विनय अथवा भक्ति नही करने मे दुष्टता-दोपपात्रता निहित है। इस कारण से दोष के प्रतिक्रमण की भाति गुणो की स्तुति को भी शास्त्रकारो ने एक आवश्यक कर्त्तव्य के रूप मे वताया है। गुण स्तुति के विना निर्गुणता-निवारण का दूसरा कोई उपाय शास्त्रकारो ने देखा नही। जब तक जीव गुण स्तुति के मार्ग पर अग्रसर नही होता है तब तक निर्गुण अवस्था मे से मुक्ति मिलने की आशा आकाश कुसुमवत् होती है।

'परमेष्ठि नमस्कार' गुण स्तुति रूप है। गुणवान की ही स्तुति होती है। पच परमेष्ठि परम गुणवान हैं अत उनकी स्तुति रूप 'परमेष्ठि नमस्कार' उत्कृष्ट मत्र रूप वनता है। सुविहित शिरोमणि

आचार्य भगवन्त श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी महाराज देवता को की गई स्तुति को ही विशिष्ट मंत्ररूप कहते हैं:

> जपः सन्मंत्र-विषयः स चोक्तो देवतास्तवः।
> दृष्टः पापापहारोऽस्माद्विषापहरणं यथा ॥१॥

अर्थ जिस प्रकार उस प्रकार के मंत्रों से विषापहार होता है वैसे ही देवता की स्तुति रूप सन्मंत्रों से पाप का अपहार होता है।

(योग बिन्दु श्लोक ३८१)

'परमेष्ठि नमस्कार' तीनों काल एवं तीनों लोकों में हुए, हो रहे एवं भविष्य में होने वाले महर्षियों को प्रणाम स्वरूप होने से परम स्तुति रूप है। अतः मंत्र रूप भी है। उससे सभी पापों का नाश होता है। इतना ही नहीं उससे सभी काल के एवं लोक के सभी महर्षियों का अनुग्रह प्राप्त होता है। साथ ही उनके प्रति परम भक्ति भाव को धारण करने वाले चारों निकायों के देव एवं देवेन्द्र, असुर एवं असुरेन्द्र, विद्याधर एवं नरेन्द्रों का भी अनुग्रह प्राप्त होता है। इससे पाँचों प्रकार के भूत एवं सचराचर सृष्टि अनुकूल बनते हैं। गुणस्तुति का यह उत्कृष्ट फल है।

गुणराग के प्रभाव का वर्णन करते हुए सकलसिद्धांतविद् महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज कहते हैं:

> "गुणी च गुणरागी च, गुणद्वेषी च साधुषु।
> श्रूयन्ते व्यक्तमुत्कृष्टमध्यमाधमबुद्धयः ॥१॥
> ते च चारित्रसम्यक्त्वमिथ्यादर्शनभूमयः।
> अतो द्वयोः प्रकृत्यैव, वर्तितव्यं यथाबलम् ॥२॥

अर्थ गुणी, गुणरागी एवं गुण द्वेषी, तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं। शास्त्रों में उन्हें अनुक्रम से उत्कृष्ट, मध्यम एवं अधम बुद्धिवाला कहा गया है। वे क्रमशः चारित्र, सम्यक्त्व एवं मिथ्यात्व की भूमिका पर आधारित हैं। अतः प्रथम दो भूमिकाओं के लिए यथाशक्ति प्रयत्नशील रहना चाहिए। (१-२)

गुणी स्वय चारित्रवान् होता है अत' उत्कृष्ट होता है। गुण-रागी सम्यक्त्वशील होता है अतः मध्यम है। गुण द्वेषी मिथ्यादृष्टि होता है अत अधम होता है। अपने मे अधमता न आ जाय इसलिए भले ही हम गुणवान न बन सके पर गुणानुरागी तो होना ही चाहिए। गुणानुरागी आत्मा गुणवान न होते हुए भी गुणस्तुति एव गुण प्रशसा के योग से सम्यक्त्वशील हो सकती है। परमेष्ठि नमस्कार गुण-स्तुति एव गुणानुराग रूप होने से सम्यक्त्व की भूमिका को टिकाकर रखने वाला है। अत: वह प्रत्येक सम्यक्दृष्टि जीव के लिए आधार है, प्राण है, आश्रय है एव परम आलम्बन है। स्तुतिकार श्री सिद्धसेन-दिवाकरसूरीश्वरजी एक स्थान पर कहते है कि :

त्व मे माता पिता नेता, देवो धर्मो गुरु पर. ।
प्राणा: स्वर्गोऽपवर्गश्च, सत्वं तत्व मतिर्गति ॥१॥

अर्थ हे भगवान ! तू मेरे लिए उत्कृष्टमाता, पिता, नेता, देव, धर्म, गुरु, प्राण, स्वर्ग, अपवर्ग, सत्त्व, तत्त्व, मति एव गति है ॥१॥

सम्यग्दृष्टि आत्मा के लिए गुणानुराग ही मुख्य वस्तु है। उसके विना इसका आन्तर जीवन-अन्तरात्मभाव क्षणमात्र भी टिक नही सकता। 'परमेष्ठि नमस्कार' गुणराग एव गुण स्तुति रूप होने से सभी लोको मे स्थित सभी सम्यग्दृष्टि आत्माओ का श्वास है। सम्यग्दृष्टि आत्माएँ उसे श्वास की भाति कठ मे धारण करती है। सम्यक्त्व की भूमिका टिका कर रखने हेतु उसकी अनिवार्यता है।

आत्मा के त्रिविध लक्षण वताते हुए श्री अध्यात्मसार प्रकरण के योगानुभव अधिकार मे कहा गया है कि

विषयकषायावेश', तत्त्वाऽश्रद्धा गुणेषु च द्वेष' ।
आत्माऽज्ञानं च यदा, बाह्यात्मा स्यात्तदाव्यक्त ॥१॥

अर्थ विषय-कषाय, गुण-द्वेष एव आत्म तत्त्व की अश्रद्धा, गुण-द्वेष एव आत्मा का अज्ञान ही वहिरात्मभाव के लक्षण हैं।

इससे निश्चित होता है कि गुण-द्वेष टले विना बहिरात्मभाव जाता नही एव अन्तरात्म भाव आता नही। चतुर्थ गुणस्थानक से

लगाकर बारहवे गुण-स्थानक की प्राप्ति तक की अवस्था-अन्तरात्म-भाव की अवस्था है। इसमे सम्यक्त्व विरति, अप्रमाद एवं श्रेणी का आरोहण अन्तर्भूत होता है। क्षपक-श्रेणी के अन्त में परमात्म-भाव प्राप्त होता है। केवलज्ञान, योगनिरोध, कर्मनाश एव सिद्धि निवास परमात्मभाव के लक्षण है। इस प्रकार गुणराग परमात्मभाव का बीज बन जाता है।

'परमेष्ठि नमस्कार' गुणराग का प्रतीक है। यदि गुणराग न भी हो तो भी वह इससे उत्पन्न हो जाता है एव यदि हो तो बढ़ता है। अन्तरात्म-भाव को लाने वाला, उसे टिकाने वाला, बढाने वाला एव अन्त मे परमात्मभाव तक पहुंचाने वाला 'परमेष्ठि नमस्कार' है। अत. मार्गानुसारी जीवो की भूमिका से लेकर सर्व सम्यग्दृष्टि देश-विरति एव सर्व-विरतिधर जीवों का 'परमेष्ठि नमस्कार' परम आवश्यक कर्त्तव्य बन जाता है। यह धर्म के प्रारम्भ से अन्त तक प्रत्येक धर्मार्थी आत्मा की उन्नति मे परम सहायक होता है; अत. पू० उपाध्यायजी महाराज ने कहा है :

सवि मत्रमा सारो, भाख्यो श्री नवकार;
कह्या न जाय रे अेहना, जेह छे बहु उपकार ॥१॥

अर्थ श्री नवकार सर्वमत्रो मे सारभूत है। इसके उपकार इतने अधिक है कि उनका वर्णन वाणी से नही किया जा सकता है।

यह मानकर कि इस पर जितना अधिक विमर्श हो जितनी अधिक अनुप्रेक्षा हो उतना ही अधिक हितकर है अलग अलग प्रसंगो मे परमेष्ठि नमस्कार पर अलग अलग जो विचार स्फुरित हुए उन्हे लिपिबद्ध करने का प्रयास किया गया है। जिन जिन ग्रथो साहित्य अथवा निबंधो के अध्ययन से मुझे लिखने मे प्रेरणा प्राप्त हुई है उन सभी ग्रथकारो एवं लेखको के प्रति कृतज्ञता भाव प्रकट करता हूं। इस पुस्तक मे जो कुछ सिद्धान्त के प्रतिकूल लिखा गया हो उसके लिए 'मिच्छा मि दुक्कड' कह इस प्रस्तावना को समाप्त करता हूं।

नवाडीसा
वि० सं० २०१४ श्रावण सुदी १ — पं० भद्रंकर विजय गणि

★

प्रकाशक के दो शब्द

श्री जिनदत्तसूरि ज्ञानमाला का बाइसवाँ पुष्प आपके सम्मुख प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक मे परमेष्ठि नमस्कार को महत्वपूर्ण विशेषताओं पर व्यापक दृष्टिकोण से विचार किया गया है। नमस्कार महामन्त्र सब मन्त्रो मे शिरोमणि है तथा उसकी साधना अन्य मन्त्रो की अपेक्षा सरल एव सुलभ है। नमस्कार द्वारा परमेष्ठि भगवन्तो के प्रति विनय समस्त विश्व के प्राणियो के प्रति प्रेम का द्योतक है। शास्त्रकारों ने परमेष्ठि नमस्कार को जगत् की माता की उपमा दी है। परमेष्ठि भगवन्तों के प्रति प्रदर्शित किया गया आदर परम सुख को देने वाला है। समस्त जगत् के सुख के लिए व अपने स्वय के हित के लिये परमेष्ठि नमस्कार सेवनीय है। परमेष्ठि नमस्कार (नवकार मत्र) सब मन्त्रो मे सारभूत है। इसके उपकार इतने अधिक हैं कि उनका वर्णन वाणी से करना असम्भव है।

प्रो० सोहनलालजो पाटनी ने प्रस्तुत पुस्तक का गुजराती से हिन्दी अनुवाद कर हिन्दी भाषी पाठको पर बहुत बडा उपकार किया है। हिन्दी भाषी पाठक इसके सेवन से सुख, सौभाग्य एव मुक्ति रमणी के परम सुख को प्राप्त करे, यही शुभेच्छा है।

इस पुस्तक को प्रकाशित करने की आज्ञा पू० प० भद्र कर विजयजी गणिवर ने मण्डल को दी उसके लिये हम उनके आभारी है व उनके चरण कमलो मे नतमस्तक है।

अक्षय तृतीया
वि० स० २०३१
वीर स० २५००
दि० २५-५-७४

चाँदमल सीपाणी
मन्त्री
श्री जिनदत्तसूरि मण्डल,
दादावाड़ी, अजमेर

श्री नमस्कार महामन्त्र की सर्वदृष्टिता

(१) मन्त्र शास्त्र की दृष्टि से नमस्कार महामन्त्र सर्व पाप रूपी विष का नाश करने वाला है।

(२) योग शास्त्र की दृष्टि से पदस्थ-ध्यान हेतु इसमें परम पवित्र पदो का आलम्बन है।

(३) आगम साहित्य की दृष्टि से सर्व श्रुत मे यह अभ्यन्तर स्थित है तथा चूलिका सहित यह महा श्रुत स्कन्ध की उपमा से मण्डित है।

(४) कर्म-साहित्य की दृष्टि से नमस्कार मन्त्र के एक-एक अक्षर की प्राप्ति हेतु अनन्तानन्त कर्म स्पर्धको का विनाश अपेक्षित है तथा उसके एक-एक अक्षर के उच्चारण से कर्म-रसाणुओ का नाश होता है।

(५) ऐहिक दृष्टि से नमस्कार मन्त्र से इस जन्म मे प्रशस्त अर्थ, काम एव आरोग्य की प्राप्ति तथा उसके योग से चित्त की प्रसन्नता प्राप्त होती है।

(६) परलोक की दृष्टि से मुक्ति, तथा मुक्ति मिलने तक उत्तम देवलोक एवं उत्तम मनुष्य कुल की प्राप्ति करवाता है। उसके परिणामस्वरूप जीव को थोडे ही काल मे बोधि, समाधि एव सिद्धि मिलती है।

(७) द्रव्यानुयोग की दृष्टि से प्रथम दो पद स्वय की आत्मा के ही शुद्ध स्वरूप हैं एव उसके बाद के तीनो पद शुद्ध स्वरूप की साधक अवस्था के शुद्ध प्रतीक रूप हैं।

(८) चरण-करणानुयोग की दृष्टि से साधु एवं श्रावक की सामाचारी के पालन मे कल्याण हेतु एव विघ्न निवारण हेतु उसका उच्चारण बारम्बार आवश्यक है।

(९) गुणितानुयोग की दृष्टि से नवकार के पदो की नौ की सख्या गणित-शास्त्र की दृष्टि से अन्य सख्याओ की अपेक्षा अखण्डता एव अभगता का विशिष्ट स्थान रखती है। नौ की सख्या नित्य

अभिनव भावो की उत्पादक होती है। नवकार की अष्ट सम्पदाएँ अनन्त सम्पदाओं को प्रदान करवाने वाली होती है तथा अणिमादि अष्ट सिद्धियों को सिद्ध करवाती है। नमस्कार मन्त्र के ६८ अक्षर अडसठ तीर्थ स्वरूप बनकर उनके ध्याता के तारक बन जाते है। अनानुपूर्वी से सम्भूत श्री नमस्कार मन्त्र के पदो का परावर्तन चित्त-स्थिरता का अमोघ कारण बनता है।

(१०) धर्मकथानुयोग की दृष्टि से अरिहंतादि पाँच परमेष्ठियो के जीवन चरित्र अद्भुत कथा स्वरूप हैं। नमस्कार का आराधन करने वाले जीवो की कथाएँ भी आश्चर्यकारक उन्नति को दिखाने वाली हैं। ये सभी कथाएँ सात्विकादि रसो का पोषण करने वाली हैं।

(११) चतुर्विधसंघ की दृष्टि से नवकार मन्त्र सभी को एक शृंखला मे जोड़ने वाला तथा सभी को एक ही स्तर तक पहुँचाने वाला है।

(१२) चराचर विश्व की दृष्टि से नमस्कार के आराधक सभी जीवो को अभय प्रदान करने वाले होते है। वे सदैव सकल विश्व की एक समान सुख शान्ति चाहते है एवं उस हेतु हर सम्भव सभी प्रयत्न किसी प्रत्युपकार की आशा अथवा इच्छा के बिना किया करते हैं।

(१३) व्यक्तिगत उन्नति की दृष्टि से किसी भी प्रकार की बाह्य साधन-सामग्री के अभाव मे भी साधक केवल मानसिक बल से परमोन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच सकता है।

(१४) समष्टिगत उन्नति की दृष्टि से यह मन्त्र एक दूसरे को समान आदर्श के पूजक बनाकर सच्छ्रद्धा, सज्ज्ञान तथा सच्चारित्र के सत्पन्थ पर अविचल रहने का उत्तम बल समर्पित करता है।

(१५) अनिष्ट निवारण की दृष्टि से नमस्कार मन्त्र का स्मरण अशुभ कर्म के विपाकोदय को रोक देता है एव शुभ कर्म के विपाकोदय

को अनुकूल बनाता है। इस नमस्कार मन्त्र के प्रभाव से समस्त अनिष्ट इष्ट रूप मे परिवर्तित हो जाते हैं, जैसे कि जंगल मगल-मय तथा सर्प फूल की माला के समान बनते है।

(१६) इष्टसिद्धि की दृष्टि से नमस्कार मन्त्र शारीरिक बल, मानसिक वुद्धि, आर्थिक वैभव, राजकीय सत्ता, ऐहिक सम्पत्ति तथा दूसरे भी अनेक प्रकार के ऐश्वर्य, प्रभाव एव उन्नति को प्रदान करता है क्योकि वह चित्त की मलिनता एवं दोषो को दूर कर निर्मलता एव उज्ज्वलता को प्रकट करता है। चित्त की निर्मलता सभी उन्नतियो का मूल है और यह निर्मलता नमस्कार महामन्त्र से सहज रीति से सिद्ध हो सकती है।

श्रीनमस्कार महामन्त्र पाप-रूपी पर्वत को भेदने के लिये वज्र के समान है।

दुःख रूपी वादलों को विखेरने के लिये प्रचण्ड पवन के समान है।

मोहरूपी दावानल को शान्त करने के लिए आषाढी मेघ के समान है।

अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य के समान है।

कल्याण रूप कल्पवेल के अवध्य वीज के समान है।

दारिद्रयरूप कद को मूल से उखाड़ने के लिए वराह की दाढ के समान है।

सम्यक्त्व रत्न को पैदा करने के लिए रोहणाचल पर्वत के समान है।

और कल्पवृक्ष, चिन्तामणि, कामधेनु, कामकुम्भ आदि से भी विशेष रूप से अधिक सब कामनाओ को पूरी करने वाला है।

पंच परमेष्ठि नमस्क्रिया का प्रभाव

श्री नमस्कार सूत्र में कहा गया है कि पंच परमेष्ठि नमस्कार सभी पापो का नाश करने वाला तथा सभी मंगलो का मूल है। उसकी महिमा विस्तार से वताने हेतु शास्त्रो से उद्धृत नाना प्रकरण रूप में रचे हुए कितने ही प्रकरण आज भी मिलते हैं। उसमे से दो प्रकरण—एक संक्षेप मे फल वताने वाला तथा दूसरा विस्तार से फल को वताने वाला है एवं वह मूल प्राकृत से सरल भाषा मे अनुवाद रूप में प्रकाशित भी हुआ है।

शास्त्रकारों ने आदेश दिया है कि संक्लेश, कष्ट तथा चित्त की अरति एवं असमाधि के समय वारम्वार नमस्कार महामंत्र को याद करना चाहिए। ज्ञानियो नें असमाधि एवं अशान्ति को अदृश्य करने का सिद्ध, शीघ्रगामी एवं अमोघ उपाय श्री नमस्कार मंत्र, उसके पदो एवं उसके प्रत्येक अक्षर का अवलम्वन वताया है। विधिपूर्वक उसके आश्रय लेने वाले को श्री नमस्कार मंत्र अपूर्व शान्ति प्रदान करता है, अनन्तकर्मो का नाश कराता है, साथ ही सद्धर्म एवं उसके परिणामस्वरूप प्राप्त होते अनंत सुखो का भागी वनाता है। जिस प्रकार वीज मे से अंकुर, अंकुर में से वृक्ष एव वृक्ष मे पत्र, पुष्प एवं फल स्वाभाविक रीति से ही उत्पन्न होते है वैसे ही श्री पंचपरमेष्ठि नमस्कार रूपी भाव वीज में से कालक्रम से सद्धर्म की चिन्तारूप अंकुरो को, सद्धर्म श्रवण एवं अनुष्ठानादिरूप वृक्ष की एवं उसकी शाखा प्रशाखाओ को, सुदेव—मनुष्यो के सुख-रूपी पत्रो को एव फूलो की, साथ ही सिद्धिगति के अक्षय सुख रूप, सदा अम्लान एवं परिपक्व मोक्षफल की प्राप्ति स्वयमेव होती है।

श्री पंच परमेष्ठि नमस्कार भाव-धर्म का वीज है एवं भावधर्म

की सिद्धि से प्राप्त होने वाले स्वर्ग एव अपवर्ग के सुखो का भी बीज है। जिससे स्वर्ग एवं अपवर्ग के दुर्लभ सुख भी सुलभ एव सहज बनते है उस नमस्कार से अन्य सुखो को प्राप्ति अथवा साधारण दुःखो की निवृति शक्य न हो यह कल्पना ही अयोग्य है। सुख चाहने वाले या दुःख दूर करने के इच्छुक आत्माओ को नमस्कार मन्त्र जैसी बिना मूल्य के प्राप्त हुई या होने वाली असाधारण वस्तु से दूर नही रहना चाहिये।

नमस्कार परममत्र है। इतना ही नही पर परमशास्त्र है। परमशास्त्र ही नही पर सर्वशास्त्रो मे शिरोमणिभूत महाशास्त्र है। शास्त्रों में इसे महाश्रुत स्कन्ध नाम से सबोधित किया हुआ है। लोक में स्थित पचास्तिकाय की तरह नमस्कार मंत्र को शाश्वत एव सहज-सिद्ध रूप में माना गया है। इसकी महिमा अभूतपूर्व है। यह अति आवश्यक है कि प्रत्येक पुण्यवान् आत्मा उस महिमावान् वस्तु को आराधना में रस ले एव प्रत्येक दुःख के प्रतिकार हेतु शास्त्रोक्त विधि के अनुसार जीवन मे उसे स्थान दे।

इस महामन्त्र के वर्णो की सयोजना ही किसी अद्भुत गणित विज्ञान के निगूढ सिद्धान्त पर आधारित मालूम होती है कि जिससे अल्प प्रयत्न से साधक की वृत्तियो मे ऊर्ध्वमुखता आ जाती है। जितनी विशिष्ट परिणाम-शुद्धि साधक ने जाप द्वारा प्राप्त की हो, उतनी ही मन्त्र-सिद्धि शीघ्र होती है। अन्य मन्त्रो के जाप से होने वाली परिणाम की शुद्धि की अपेक्षा श्रीनवकार के जाप से परिणाम की विशुद्धि अल्प प्रयत्न से अधिक प्राप्त होती है।

जिससे उसके व्यवस्थित जाप के बल से साधक का चित्त जाप से ध्यान मे, ध्यान से लय मे, लय से समाधि मे और समाधि मे से प्रज्ञा (उत्कृष्ट क्षयोपशमजन्य-प्रातिभज्ञान) मे शीघ्रता से पहुँच जाता है।

श्री नमस्कार महामन्त्र की अचिन्त्य कार्यशक्ति

मानव जीवन मे नमस्कार का स्थान वहुत ऊँचा है। मनुष्य के हृदय की कोमलता, गुण ग्राहकता एव भावुकता का वह परिचायक है। अपने से श्रेष्ठ एवं पवित्र महान् आत्माओ का भक्तिभाव से गद्‌गदित होकर नमस्कार करना मानव मात्र का सहज धर्म है। इससे अहता का नाश होता है एवं योग्य के चरणो मे स्वयं के समर्पण का आत्मतोष अनुभूत होता है।

नमस्कार नम्रता एव गुणग्राहकता का एक विशुद्ध प्रतीक है। नमस्कार से उत्तम आत्माओ से अपनी हीनता एवं उनकी उच्चता का इकरार होता है। इतना ही नही पर यह इकरार अपने मे उत्तम गुणो का आधायक होने से मानव मात्र का परम धर्म वन जाता है। विशुद्ध नमस्कार से उपासक की आत्मा मे उपास्य के प्रति भक्ति का ऐसा साम्राज्य स्थापित होता है कि यह भक्तिभाव सत्संस्कार को ग्रहण करने हेतु एक सरल एव सरस साधन हो जाता है।

अपने से अधिक विकसित आत्माओ को देखकर, सुनकर भक्ति-भाव से द्रवित होना एवं उनके प्रति भक्तिभाव सहित वहुमान एव सम्मान प्रदर्शित करना, प्रमोद भाव का ही एक स्वरूप है। प्रमोद भावना से हृदय विशाल, उदार एवं उदात्त वनता है एव इस भावना के अभ्यास से गुण प्राप्ति सुलभ होती है। इतना ही नही, हृदय मे स्थित ईर्ष्या, असूया आदि दोप जल कर भस्म हो जाते हैं।

महान् आत्माओ को नमस्कार करने मात्र से इतना वड़ा फल मिलता है यह वात आज के तर्क प्रधान युग मे सुसंगत कैसे विठाना?

यह प्रश्न जिस प्रकार सहज है वैसे ही उसका उत्तर भी उतना ही सरल है।

स्थूल जगत् मे हाथ पांव हिलाने आदि को ही क्रिया कहा जाता है, आन्तर जगत मे ऐसा नही। आतर जगत मे क्रिया की रीति भिन्न प्रकार की है। सूर्य के उदय होते ही चोर पलायन कर जाते हैं। इस क्रिया मे सूर्य को कुछ करना नही पडता है। सूर्य के निमित्त मात्र से वह क्रिया अपने आप हो जाती है। इसी प्रकार कमल को विकसित करने हेतु सूर्य को कमल के पास नही जाना पड़ता। गगन मण्डल में सूर्य के उदय होते ही कमल स्वयमेव विकसित हो जाते हैं। परमेष्ठि नमस्कार मे यही नियम लागू होता है। पापरूपी चोरो को भगाने हेतु एव भव्यात्माओं के हृदय रूपी कमलों को विकसित करने हेतु परमेष्ठि भगवान् मात्र आलम्बन रूप-निमित्त हैं। उनके निमित्त मात्र से वह कार्य अपने आप हो जाता है। नमस्कार से साधक जिस परमोच्च आलम्बनो से सम्पर्कित होता है वे आलम्बन सूर्य की भाति निमित्त बनकर साधक की आत्मा की विशुद्धि करते है एवं अशुद्धि को दूर कर देते हैं।

जैन धर्म मे श्री पच परमेष्ठि नमस्कार को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है। इसका कारण यह है कि समस्त धर्म क्रियाओ मे यह केन्द्र स्थानीय है। उसे सर्व शास्त्रो का नवनीत माना है। उसे सभी धर्म भावनाओ का मूल स्रोत कहा गया है इसमे आलम्बन रूप मे सर्व देश के एव सर्व काल के सर्व श्रेष्ठ महापुरुषो का सग्रह किया गया है। उन सबका परमोच्च आलंबन प्राप्त कर साधक की आत्मा पापवासना से रहित एव धर्मवासना से युक्त बन जाती है। इसी कारण सर्व मगलो मे इसे प्रथम मगल माना है। सभी मंगलो मे इसे राजा का स्थान प्राप्त है एव दूसरे सभी मगल उसके सेवको का काम करते है।

जैन मत मे बाह्यमगल सर्वथा एवं सर्वदा मंगल नही माने जाते। दही मगल है पर ज्वरग्रस्त के लिए अमगल है। अक्षत मंगल है पर उड़कर आखो मे गिरे तो अमगल बनता है। परमेष्ठि नमस्कार महा

मंगल है, उसका सवन्ध आन्तर जगत् के साथ है। यथा योग्य उपयोग करते हुए भी दूसरे मगल विफल सिद्ध होते हैं परंतु इसमे ऐसा नही होता। अतः यह एकान्तिक मंगल है। इतर मंगलों के फल का नाश होता है पर इसके फल का नाश नही होता अतः यह आत्यन्तिक मगल है। जव जव इसका आश्रय लिया जायगा तव तव यह अवश्य फलदायी होगा। यह शुभभाव रूप है अतः अशुभ भावो का नाश करता है एवम् अधिकाधिक मागलिक भावो को जगाता है। मानवात्मा भावमय है अत. परमेष्ठि नमस्कार से वह शुभ एव मंगल भावमय वनता है। इसीसे अशुभ एव अमगल भावो को जीता जाता है, परिणाम स्वरूप साधक सदा के लिए सुख एवं सद्गति का भागी वनता है।

श्रीपच परमेष्ठी भगवत जगत् मे सर्वश्रेष्ठ सन्मान के योग्य है, उनको नमस्कार करने से सन्मान का दान होता है, क्योकि नतमस्तक होना, यह उनका महान् सन्मान है। नतमस्तक होने से 'अह' का विष उतर जाता है और सव ही योग्य जीवो को झुकने का सत्त्व अपनी आत्मा मे प्रकट होता है। 'अह' को झुकाये विना एक भी शत्रु नही झुकता और पच परमेष्ठी को झुके विना 'अह' कदापि नही झुकता। 'अह' को झुकाने मे नवकार की साधना अति आवश्यक है।

नमस्कार कहता है कि तुम सव मुझे तुम्हारे 'अह' को सुपुर्द कर दो, तो मैं तुमको अर्हं सुपुर्द कर दूंगा।

श्री नमस्कार महामन्त्र की व्यापकता

जगत मे मुख्य रूप से तीन प्रकार के मानव दिखाई देते हैं: शास्त्रानुसारी, तर्कानुसारी एव भावनानुसारी। पहला वर्ग आज्ञा प्रधान मनोवृत्ति युक्त होता है, दूसरा वर्ग युक्ति प्रधान मनोवृत्ति वाला एव तृतीय वर्ग आज्ञा से एव युक्ति से निरपेक्ष केवल भाव एवं संवेदनशील मनोवृत्ति वाला होता है। इन तीनो प्रकार के मनुष्यो को नमस्कार महामन्त्र की व्यापकता एव श्रेष्ठता बताने के लिए शास्त्रकार महर्षियो ने अथक प्रयत्न किया है।

(१) शास्त्रानुसारी वर्ग

शास्त्रानुसारी वर्ग आज्ञा प्रधान मनोवृत्ति वाला होता है। आज्ञा का अर्थ है आप्त वचन। जैन शासन मे आप्त पुरुषो के रूप मे रागादि दोषो से रहित वीतराग एव सर्वज्ञ की गणना होती है। वे इसी कारण सर्वज्ञ एव सर्वदर्शी हुए हैं। उनका वचन ही आज्ञा है, जिसका अनुसरण करने की वृत्ति शिष्ट पुरुषो में स्वाभाविक रूप से होती ही है।

शास्त्रानुसारी आज्ञा प्रधान आत्माओ को श्री नमस्कार महामन्त्र की सर्व शास्त्र व्यापकता एव सर्वश्रुत-अभ्यन्तरता समझने हेतु श्री तीर्थंकर देवो द्वारा प्रकाशित एव श्री गणधर देवों द्वारा गुम्फित श्री आवश्यक सूत्र की सूरिपुरन्दर श्री हरिभद्रसूरि विरचित टीका (पृ० ३७६) मे कहा गया है कि.—

"तत्र सूत्र सूत्रानुगमे सत्युच्चारणीय, तच्च पचनमस्कारपूर्वक, तस्याऽशेषश्रुतस्कन्धाऽन्तर्गतत्वात्"।

अर्थ यहाँ सूत्र का अर्थ सामायिक सूत्र से है एवं उसके अनुगम का अर्थ है व्याख्यान के समय पच नमस्कार पूर्वक सूत्रोच्चारण

करना चाहिये, क्योंकि पच नमस्कार सर्वश्रुत स्कन्ध के अन्तर्गत निहित है।

आवश्यक निर्युक्ति

सामायिक सूत्र का उच्चारण करने का विधान होने से श्री परमेष्ठि नमस्कार मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। इसीलिये श्री सामायिक सूत्र का व्याख्यान करने से पूर्व श्री पच परमेष्ठि नमस्कार का व्याख्यान करना चाहिये। इस बात को विशेष स्पष्ट करते हुए टीकाकार महर्षि कहते है कि—

"अतोऽसावेव सूत्रादौ व्याख्येय', सर्वसूत्रादित्वात्, सर्वसम्मत-सूत्रादिवत्, सूत्रादित्व चाऽस्य सूत्रादौ व्याख्यायमानत्वात् निर्युक्ति-कृतोपन्यस्तत्वाच्च"।

अर्थ—इसलिये सूत्रारम्भ में श्री पंच नमस्कार की ही व्याख्या करनी चाहिये क्योकि उसकी स्थिति सभी सूत्रो के आदि मे है। जो सभी सूत्रो के आरम्भ मे हो, उसकी व्याख्या सबसे पहले करना चाहिये, यह बात विद्वानो को सम्मत है। श्री पच नमस्कार की आदिसूत्रता इस पर से सिद्ध होती है कि निर्युक्तिकार भगवान् ने सर्व प्रथम उसका उपन्यास किया है एव सर्व प्रथम उसकी ही व्याख्या की है।

इस प्रकार निर्युक्तिकार श्रुत केवली भगवन्त श्री भद्रबाहु-स्वामिजी के प्रामाण्य से टीकाकार महर्षि श्री हरिभद्रसूरिजी भी श्री पच परमेष्ठि नमस्कार को सर्वश्रुत के अभ्यन्तर अर्थात् सर्वशास्त्र-व्यापी प्रतिपादित करते हैं एव सर्व प्रथम उसकी ही व्याख्या का आदेश देकर श्री पच परमेष्ठि नमस्कार की सर्वश्रुत-श्रेष्ठता विज्ञापित करते हैं।

आवश्यक सूत्र के कर्ता

अर्थ से श्री आवश्यक सूत्र के कर्ता श्री अरिहत देव है, सूत्र से श्री गणधर भगवन्त है। श्री आवश्यक निर्युक्ति के कर्ता चौदह पूर्व-

धर श्रुतकेवली भगवन्त श्री भद्रबाहु स्वामी है तथा मूल सूत्र एवं उसकी निर्युक्ति पर टीका के प्रणेता १४४४ ग्रन्थ के प्रणेता समर्थ शास्त्रकार श्री हरिभद्रसूरिश्वरजी हैं। वे कहते हैं कि सूत्र के व्याख्यान से पूर्व सूत्र का उच्चारण करना चाहिये एवं इस सूत्र का उच्चारण पच नमस्कार पूर्वक करना चाहिये क्योकि श्री पंच नमस्कार सर्वश्रुत के अभ्यन्तर स्थित है, सर्वश्रुत के अभ्यन्तर अर्थात् सर्व सिद्धान्तो मे व्यापक। श्री जिनागम का कोई भी सूत्र अथवा कोई भी शास्त्र श्री पंच नमस्कार रहित है ही नही। श्री पंच नमस्कार सर्वश्रुत एवं सर्वशास्त्रो के अभ्यन्तर स्थित ही है। यह स्पष्ट रूप से जानना चाहिये कि भले वह स्पष्ट रूप से उल्लेखित नही किया गया हो तो भी उसमें स्थित है ही। क्योकि पच नमस्कार के उच्चारण विना किसी भी शास्त्र का अध्ययन अथवा अध्यापन श्री जैन शास्त्र मे विहित नही।

आदिमंगलता

श्री पंच नमस्कार की सर्वश्रुत अभ्यन्तरता एवं आदि मंगलता को शास्त्रकारो के वचन से जानकर उसका आचरण श्री निर्युक्तिकार भगवान् से लगाकर अधुनातन समस्त श्रुतधरो को मान्य है एवं आज भी किसी भी सूत्र, व्याख्यान अथवा प्रवचन के प्रारम्भ में सर्व-प्रथम श्री पंच नमस्कार का स्मरण किया जाता है तथा सभी प्रकार की शुभ क्रियाओ के प्रारम्भ में आदिमंगल रूप में उसे ही गिना जाता है।

(२) तर्कानुसारी वर्ग

शास्त्रानुसारी वर्ग के पश्चात् दूसरा नम्बर तर्कानुसारी वर्ग का आता है। शास्त्रानुसारी वर्ग आज्ञाप्रधान होता है तो तर्कानुसारी वर्ग युक्तिप्रधान होता है। प्रजा के लिए राजा के वचन की तरह लोकोत्तर पुरुषो मे श्री तीर्थङ्कर गणधरो का वचन अन्य किसी युक्ति की अपेक्षा नही रखता है। राजा की आज्ञा ही वास्तविक आज्ञा है एव उसके सामने बुद्धि अथवा युक्ति की बाते टिकती नही वैसे ही श्री तीर्थङ्कर-गणधरो के वचन के समक्ष भी युक्ति अकिंचित्कर एव

बुद्धि निर्बल है। अतीन्द्रिय ज्ञान से देखे हुए पदार्थ छद्मस्थ बुद्धि से कभी खण्डित हो नही सकते। श्री पंच परमेष्ठि नमस्कार की सर्वश्रुत-अभ्यन्तरता एवं सर्वश्रुत व्यापकता आप्त वचन से सिद्ध है। युक्ति अथवा तर्क के आधार की लेशमात्र भी अपेक्षा नही। इस पर भी आप्त वचन की महत्ता अभी तक जिनके ध्यान मे नही आई है उस बुद्धिजीवी वर्ग के भी अनुग्रह के लिये पचपरमेष्ठि नमस्कार की श्रेष्ठता तथा सर्व धर्म व्यापकता सिद्ध करने के लिये शास्त्रकार महर्षियो ने प्रतिपादन करने मे कसर नही रखी है।

धर्म बीज का वपन

आचार्य भगवान् श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने 'श्री ललित विस्तरा' नामकी चैत्यवन्दन सूत्र की वृत्ति (पृ० ८) मे कहा है कि "धर्म प्रति मूलभूता वन्दना" अर्थात् धर्म प्राप्ति का मूलभूत कारण वन्दना है जिसका दूसरा नाम नमस्कार है। कहा है कि—

"विधिनोप्ताद्यथा बीजादङ्कुराद्य दयः क्रमात् ।
फलसिद्धिस्तथा धर्मबीजादपि विदुर्बुधाः ॥"

अर्थ—ज्ञानी कहते हैं कि विधि पूर्वक वोए हुए वीज से जिस प्रकार अंकुरादि का उदय होता है वैसे ही धर्मवीज से भी अनुक्रम से मोक्षरूपी फल की सिद्धि होती है।

सत्पुरुषो की प्रशसादि करना ही धर्म बीज का वपन है, धर्म चिन्तादि उसके अंकुर हैं एवं निर्वाण की प्राप्ति उसका फल है। यह प्रशंसा अर्थात् वर्णवाद एवं आदिशब्द से उनके प्रति कुशलचित्त, उचित कृत्यकरण आदि समझना चाहिए। सत्पुरुषो के प्रति मन से कुशलचित्त धारण करना, काया से उनका उचित कृत्य कर्म करना एव वाणी से उनकी प्रशसा स्तुति आदि करना ही हृदय रूपी भूमिका मे धर्म वीज का वपन करने की शुभ क्रिया है। धर्म चिन्तादि उसके अकुर हैं, उसमे धर्म की चिन्ता एव आदि शब्द से धर्म की अभिरुचि इत्यादि को धर्म वीज के अंकुर जानना चाहिये। धर्म की चिन्ता के पश्चात् धर्म का श्रवण होता है, धर्म का श्रवण होने के पश्चात् धर्म

के अनुष्ठान होते हैं। उसके फलस्वरूप मे देव एवं मनुष्य की सम्पदाये मिलती है एव परिणाम स्वरूप निर्वाण सुख की प्राप्ति होती है। ये सब धर्म बीजो मे से क्रमशः उत्पन्न होने वाले अकुर, काण्ड, नाल, पुष्प एव फल स्वरूप है।

बीजांकुर न्याय

पच परमेष्ठि नमस्कार बीजरूप बनकर काल के परिपाक से निर्वाण रूपी फल का कारण बनता है। अत उसकी जिज्ञासा भी (वस्तु को सत्य स्वरूप मे जानने की इच्छा) परम महोदय को बताने वाली है। सच्ची जिज्ञासा होने के पश्चात् सद्गुरु का योग होता है, सद्गुरु के योग से परमेष्ठि नमस्कार स्वरूप का बोध तथा उसमे स्थैर्य उत्पन्न होता है। इस स्थैर्य के योग से शास्त्रोक्त विधि के अनुसार क्रिया होती है एव इस क्रिया के प्रताप से कर्ममल घटता है। परिणाम-स्वरूप निर्वाण सुख की प्राप्ति होती है। परमेष्ठि नमस्कार शास्त्रो में चिन्तामणि से एवं कल्पवृक्ष से भी अधिक फलदायी कहा गया है—इस अपेक्षा से यह वचन चरितार्थ होता है।

सूर्यखद्योत दृष्टान्त

तर्कानुसारी के प्रति जिस प्रकार बीजाकुर न्याय से नवकार की सर्व धर्म व्यापकता सिद्ध होती है वैसे ही सूर्यखद्योत के दृष्टान्त से भी शास्त्रकार भगवन्त श्री नमस्कार मन्त्र की श्रेष्ठता सिद्ध कर बताते है। आचार्य भगवन्त श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी योगदृष्टि समुच्चय नामक ग्रन्थ रत्न मे कहते हैं कि:—

तात्त्विक. पक्षपातश्च, भावशून्या च या क्रिया।
अनयोरन्तर ज्ञेय, भानुखद्योतयोरिव ॥ १ ॥

अर्थ—तात्त्विक पक्षपात एव भावशून्य क्रिया, इन दोनो के बीच सूर्य एव जुगनू जितना ही अन्तर समझना चाहिये।

यहाँ पक्षपात का अर्थ है शुभेच्छा, अन्तरंग आदर, परमार्थ राग। नमस्कार परमेष्ठियो के प्रति एव उनके गुणो के प्रति परमार्थ

राग को सूचित करता है, अन्तरंग आदर को बताता है। ससार मे जैसे भाव रहित भोजन रुखा होता है, वैसे ही लोकोत्तर में भावरहित भक्ति व्यर्थ है। परमेष्ठियो के प्रति भाव विना, अन्तरंग आदर विना, उनकी आज्ञा का पालन भी वैसा ही है। नमस्कार हृदय के भाव का उत्पादक है, हृदय के भाव का पूरक है अथवा हृदय के भाव का सूचक है। इसी कारण बुद्धिमान पुरुषो ने उसे सर्व प्रथम स्थान दिया है।

संवेदन प्रधान वर्ग

आज्ञा प्रधान एव युक्ति प्रधान वर्ग के पश्चात् एक वडा वर्ग ऐसा है कि जो केवल सवेदन प्रधान होता है। शास्त्रवचन की अपेक्षा अथवा उन वचनो को सिद्ध करने वाली युक्तियो की अपेक्षा इस वर्ग को दृष्टान्त, कथानक अथवा चारित्र अधिक आकर्षित करते हैं। इस वर्ग को शास्त्रवचन अथवा हेतु युक्तियो की अधिक अपेक्षा नही होती। जिस क्रिया से लोगो को लाभ पहुँचा हुआ हो उसके कथानक अथवा चरित्र सुनकर वह वर्ग उसकी ओर आकर्षित होता है। ऐसा वर्ग प्रमाण मे हमेशा वडा होता है, वह वर्ग संवेदनशील होता है। वहुधा बुद्धिजीवी वर्ग में जो संवेदनशीलता दिखाई नही देती वह सवेदनशीलता इस वर्ग में दिखाई देती है एवं सवेदनशीलता के वल पर ही यह वर्ग धर्म के प्रति आकर्षित होता है। इस वर्ग को नमस्कार की व्यापकता समझाने हेतु शास्त्रकार भगवान् ने वहुत से दृष्टान्त, कथानक एवं चरित्र कहे हैं।

कथानुयोग का प्रभाव

नमस्कार महामन्त्र के प्रभाव से सर्प धरणेन्द्र वनता है एव चील राजकुमारी के रूप मे जन्म लेती है। अरण्य का भील राजा वनता है एव उसकी स्त्री भीलनी राजरानी के रूप में उत्पन्न होती है। पशुचारक गोपालवाल परमशील सम्पन्न सुदर्शन सेठ वन जाता है एव भयंकर कोढ-रोगी परमरूप एवं लावण्य सम्पन्न श्रीपाल कुमार वनता है। श्री नमस्कार मन्त्र के प्रभाव से घोर विपत्ति मे पतित जुआरी भी प्राणान्त आपत्ति में से उवर गए हैं। सुशील एवं सम्यग्-दृष्टि महासतियों को जव पति आदि की तरफ से प्राणान्तकारी

आपत्तियाँ दी जाती है तो एक नमस्कार महामन्त्र द्वारा उनका रक्षण हुआ है। इसी मन्त्र से श्मशान में स्थित शव सुवर्ण पुरुष बन जाता है तथा अन्धकार मे स्थित सर्प दिव्य सुगन्धयुक्त पुष्पमाल बन जाता है।

ये दृष्टान्त कोरे बुद्धिजीवी वर्ग पर कदाचित् कम प्रभाव उत्पन्न करते हो पर संवेदनशील विशाल जनता पर उसका भारी प्रभाव पड़ता है। जैन कुल मे उत्पन्न आम वर्ग पर श्री नमस्कार महामन्त्र का प्रभाव आज भी अपना प्रबल प्रभाव पैदा कर रहा है। उसके पीछे इन चरित्रो एवं कथानको का बहुत अधिक प्रभाव है। बुद्धिजीवी वर्ग पर उसका प्रभाव नही पड़ने का कारण उसकी बुद्धिजीविता नही पर कुछ अश मे सवेदनहीनता भी है, ऐसा मानना चाहिए। बुद्धिजीवी वर्ग मे अग्रणी सभी पूर्व महापुरुषो पर इस मन्त्र का प्रभाव पड़ा है एव उसके प्रभाव का वर्णन करने वाले चरित्रो ने उनके जीवन को नमस्कार मन्त्र से भावित करने हेतु बड़ी सहायता की है।

सच्ची बुद्धि एवं उसका फल

सवेदनहीन बुद्धिमत्ता बाह्यदृष्टि से चाहे जैसी आकर्षक दीखती हो पर आन्तरदृष्टि से उसका कुछ भी मूल्य नही। आज्ञा एव युक्ति से सिद्ध परमेष्ठि नमस्कार के फल का वर्णन करते हुए चरित्र एव कथानको का प्रभाव जिनके अन्तःकरण पर उत्पन्न नही होता उनकी बुद्धि उनके लिये केवल भार रूप होती है। वे बुद्धि के फलस्वरूप भाव एव भाव के फलस्वरूप मोक्ष से सदा वचित रहते है। सच्ची बुद्धि वही है कि जो सद्वस्तु के प्रति, सद्वस्तु को सिद्ध करने वाली युक्ति के प्रति एवं सद्वस्तु के प्रभाव का वर्णन करने वाले चरित्र, कथानक, अथवा दृष्टान्त के प्रति सद्भाव को उत्पन्न कर सके एवं वस्तु को पहिचानने हेतु सभी पक्षो का एक सा मूल्याकन कर सके।

भील एव महिषीपाल मनुष्यो के तथा सर्प एव चील आदि तिर्यंचो के उदाहरण यह बताते हैं कि श्री नमस्कार मन्त्र का प्रभाव

अधमाधम मनुष्यो एवं क्रूरातिक्रूर तिर्यंचों पर भी पड़ा है। चोर, व्यभिचारी, जुआरी एव शिकारी जैसे महाव्यसनी भी नमस्कार मन्त्र के प्रभाव से भवसमुद्र से तिर गए है।

इस प्रकार शास्त्र वचन, तर्क बुद्धि एव स्वानुभवसवेदन इन तीनो से सिद्ध श्री पच परमेष्ठि नमस्कार का प्रभाव सभी काल एवं सभी लोक मे सभी विवेकी आत्माओ के अन्त.करण पर जयवन्त हो रहा है।

मानव जन्म दुर्लभ है, उससे भी दुर्लभ पवित्र एव तीव्र बुद्धि है। नमस्कार शुभकर्म होने से उसके द्वारा बुद्धि तीक्ष्ण होती है। नमस्कार मे भक्ति की प्रधानता होने से बुद्धि विशाल एव पवित्र बनती है। नमस्कार मे सम्यक् ज्ञान होने से बुद्धि सूक्ष्म भी बनती है। इस प्रकार बुद्धि को सूक्ष्म, शुद्ध एवं तीक्ष्ण बनाने की सामर्थ्य नमस्कार मे निहित है। परमपद की प्राप्ति हेतु बुद्धि के इन तीनो गुणो की आवश्यकता है। सूक्ष्मबुद्धि विना नमस्कार के गुण जाने नही जा सकते, शुद्ध बुद्धि विना नमस्कार के गुणो का स्मरण चित्त रूपी भूमि मे सुदृढ़ नही किया जा सकता।

नमस्कार-कर्ता मे निहित न्याय, नमस्कार्य तत्त्व मे निहित दया, एव नमस्कार क्रिया मे निहित सत्य, बुद्धि को सूक्ष्म, शुद्ध एव स्थिर कर देता है। इस प्रकार बुद्धि को सूक्ष्म, शुद्ध एव स्थिर करने का सामर्थ्य नमस्कार मे निहित है।

नमस्कार मनुष्य का स्वभावसिद्ध धर्म

अपने से महान्, पवित्र एव निर्मल आत्माओं को नमस्कार करने की प्रथा मानवसृष्टि मे नई नही है किन्तु अनादिकाल से चल रही है। महापुरुषो के पवित्र व्यक्तित्व का आकर्षण ही कुछ ऐसा है कि भक्तिशील व्यक्ति अपने आप उनके चरण कमलो मे नतमस्तक हो जाते है। वे नमस्कार के रूप मे सर्वस्व समर्पण करने के लिए तैयार हो जाते हैं, आत्मोन्नति की साधना हेतु उत्कठित साधक के हृदय मे आत्मनिष्ठ महापुरुषो के प्रति भक्ति एव समर्पण का भाव स्वयमेव जाग्रत हो जाता है। जब तक इष्टतम को नमस्कार नही किया जाय तब तक उसके आन्तरमन को शान्ति प्राप्त नही होती। आराध्यतम आत्माओ को नमन करने के साथ आराधक आत्मा की अन्तरात्मा मे दिव्यशान्ति विस्तीर्ण हो जाती है एव ससार के उत्पातों से क्षुब्ध अन्त करण, नमनीय को नमने से स्वस्थ एव प्रसन्न होता है। इससे यह निश्चित होता है कि उत्तम आत्माओ को नमस्कार करना केवल धार्मिक रिवाज या औपचारिक सभ्यता ही नही किन्तु मनुष्य प्रकृति मे स्थित एक उत्तम स्वभाव सिद्ध सहज धर्म है।

श्री जिनागमो मे परमेष्ठि नमस्कार को महाश्रुत-स्कन्ध रूप मे वर्णित किया गया है। प्रत्येक शास्त्र के प्रारम्भ मे उसे स्थान दिया गया है इसीलिये वह समस्त श्रुत-स्कन्ध मे अन्त. स्थित है। जहाँ जहाँ शास्त्रो के नामो का स्मरण किया गया है वहाँ वहाँ दूसरे शास्त्रों के साथ नमस्कार की स्वतन्त्र गणना नही की गई वह यह बताने के लिये कि नमस्कार मन्त्र सर्व श्रुतस्कन्धो मे व्याप्त है। श्रीमद् अभयदेवसूरीश्वरजी म० श्री भगवती सूत्र की टीका मे कहते हैं.

अत एवाय समस्त श्रुतस्कन्धानामादावुपादीयते, अत एव चायं तेपामभ्यन्तरतयाऽभिधीयते, यदाह 'सो सव्वसुयक्खधब्भतर भूओ' त्ति" (पृष्ठ २)

अर्थ इसी कारण यह परमेष्ठि नमस्कार समस्त श्रुतस्कन्धों (उन उन समस्त शास्त्रो के) के आरम्भ मे ग्रहण किया जाता है एव

इसीलिये उसकी सर्वश्रुत अभ्यन्तरता गिनी जाती है। कहा है कि, 'वह सर्वश्रुतस्कन्धो मे अभ्यन्तरभूत है' इत्यादि।

परमेष्ठि पॉच है अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एव साधु। ये पॉच विश्व की महान् आत्माएँ है। शास्त्रो मे उनका पुष्कल गुणगान किया गया है। ये कोई व्यक्ति विशेष के नाम नही है परन्तु आध्यात्मिक विकास होने से प्राप्त पॉच मंगलमय उच्च पदो के सर्वोच्च स्थानो के नाम है।

श्री जिनेश्वर देवो द्वारा स्थापित धर्म कोई व्यक्तिगत धर्म नही किन्तु आन्तर शत्रुओ पर विजय प्राप्त करने हेतू विश्व व्यापी राजमार्ग है। इन्द्रियो पर, इन्द्रियो के विकारों पर, मन पर, मन की मलिन वासनाओ पर एव इनके कारणभूत कर्म शत्रुओ पर विजय प्राप्त करने के श्रेष्ठ मार्ग का ही नाम जैन धर्म है। जैन धर्म का यह मन्तव्य है कि ससार का कोई भी प्राणी जो स्वय पर, अपनी इन्द्रियो पर एव मन पर, विकारो एव वासनाओ पर विजय प्राप्त करे तो वह अभिनन्दन का पात्र है, महात्मा रूप मे एव परमात्मा तक के रूप मे पूजा के योग्य है। परमेष्ठि नमस्कार मे इसी कारण किसी-व्यक्ति विशेष के नाम नही पर केवल आध्यात्मिक भूमिकाओ का वर्णन है। सर्वकाल एव सर्वलोक मे जो कोई आन्तर शत्रुओ के विजेता हुए है, होगे एव हो रहे है उसमे उन सबको नमस्कार किया गया है। जैन धर्म की यह भव्य एव उदात्त भावना समष्टि उपासना का सुन्दर एव भाव-भरा चित्र है।

"नमो लोए सव्व-साहूण।" इस पद मे स्थित 'लोए' एव 'सर्व' शब्द की व्याख्या करते हुए श्री भगवती सूत्र की टीका मे कहा है कि— 'लोके' मनुष्य लोके, न तु गच्छादौ, ये सर्व साधवस्तेभ्यो नम।"

अर्थ 'लोके' अर्थात् मात्र गच्छ मे स्थित नही किन्तु मनुष्य लोक मे जो कोई साधु हुए है, होगे अथवा है उन सबको नमस्कार हो।

इस पर कुछ लोग शका करते है कि अरिहन्त आदि महान् है, पवित्र है, सर्वगुण सम्पन्न है, परन्तु उससे दूसरो को क्या लाभ? जब

वे स्वय वीतराग होने से भक्त को स्वर्ग अथवा मोक्ष कुछ भी प्रदान नही कर सकते है तो फिर उन्हे नमस्कार करने से क्या लाभ ?

इसका उत्तर एक ही है कि पवित्रतम आत्माओं को नमस्कार करना विवेकी मनुष्यमात्र का स्वभाव सिद्ध धर्म है । आदर्श स्वरूप महान् आत्माओ को नमना, पूजना सहृदय मानव का एक स्वतन्त्र एव सहज सिद्ध भाव है, इसमे देने लेने का कोई प्रश्न ही नही । गुणीजनो को देखकर हृदय मे प्रमोद होना मानवात्मा का दिव्यगान है, गुणवान् आत्माओ को पुन पुन नमस्कार करने से आत्मा उनके गुणो की तरफ आकर्षित होती है, अन्तर से उन जैसा बनने की इच्छा करती है । उपास्य के गुणो जैसे गुण अपने मे आ जाने हेतु अभिरुचि जगती है । भक्त से भगवान् एव आत्मा से परमात्मा बनने का नमस्कार एक राजमार्ग है । ध्येय के अनुसार ध्याता अन्त मे ध्येय रूप मे परिवर्तित होता है, यह एक सनातन सत्य है । उसका साक्षात्कार नमस्कार से होता है । नमस्कार नमस्कार्य से कुछ लेने हेतु है, ऐसा नही है किन्तु अपनी आत्मा को नमस्कार्य स्वरूप बनाने हेतु है । भाव की विशुद्धि हेतु, भावना की पवित्रता हेतु एव आदर्श की स्थिरता हेतु पवित्र एव आदर्शभूत पुरुषो को नमना, बारम्बार नमना मानव जीवन का एक पवित्रतम कर्त्तव्य है । नमस्कार का यह आन्तरिक रहस्यभूत भाव है एव वह श्री नमस्कार महामन्त्र के पवित्र पदो द्वारा सूचित होता है ।

ससार मे अनन्तानन्त आत्माएँ स्थित है । चार गतियो, पाँच जातियो, एव चौरासी लाख जीव योनियो मे अपने अपने कर्मानुसार जीव सुख-दु ख भोग रहे है । उनमे से अनन्त आत्माएँ ऐसी है कि जो ससार यात्रा को पार कर सिद्ध, बुद्ध एव मुक्त बन अजरामर पद को प्राप्त कर चुके है । इस प्रकार कर्मबद्ध एव कर्ममुक्त दोनो प्रकार की आत्माए लोक मे स्थित है परन्तु उनमे से जो जीव मुक्त हो चुके हैं एव मुक्त होने हेतु जो सतत प्रयत्नशील हैं वे ही नमस्कार के पात्र है । जैन शास्त्र मे उन्हे पचपरमेष्ठि कहा गया है । उसका अर्थ यह है कि ससार के अनन्तानत आत्माओ मे आध्यात्मिक दृष्टि से पाच प्रकार की आत्माए सर्वश्रेष्ठ है, सबसे महान् है, सर्वोच्च दशा को

प्राप्त एवं प्राप्त होने वाली है, परमपद पर पहुँची हुई एवं पहुँचने वाली हैं, अर्थात् पवित्र स्वरूप को प्राप्त कर चुकी एवं प्राप्त करने वाली है। अन्य वासना मग्न आत्माओं की अपेक्षा आध्यात्मिक विकास की उच्च भूमिका पर स्थित है। अरिहत आदि पांच पदों द्वारा ससार की सर्वोच्च आत्माओं को सगृहीत किया गया है।

दूसरी तरफ ससार के वडे से वड़े पद इन्द्र एव चक्रवर्ती के है जो इन पदों को प्राप्त इन पांच प्रकार की आत्माओं के समक्ष अल्प हैं, तुच्छ हैं एव हीन है। भौतिक सत्ता के वडे से वडे प्रतिनिधि असख्य देवी-देवताओं पर शासन चलाने वाले स्वर्ग के इन्द्र भी त्यागमार्ग के प्रतिनिधि स्वरूप इन पांच महान् त्यागी वर्ग के समक्ष नतमस्तक होते हैं। नमस्कार महामत्र मे इन पाचों परमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है अतः उसे परमेष्ठिमत्र भी कहा गया है।

जीवत्व की दृष्टि से सभी जीव समान हैं फिर भले ही वह वद्ध हो अथवा मुक्त, परन्तु जो जीव अपनी अपेक्षा ज्ञानादि से हीन एव अपने से राग-द्वेषादि से अधिक युक्त है वह आध्यात्मिक मार्ग मे अवदनीय हैं। जो ज्ञानादि से महान् है एव राग-द्वेषादि से रहित है वह त्रिकाल वदनीय है। अरिहत एव सिद्ध आदि पूर्ण रूप मे रागादि से रहित एव ज्ञानादि से पूर्ण है। आचार्य, उपाध्याय, साधु प्राय. एक देश से रागादि की हीनता एव ज्ञानादि की विशेषता वाले हैं। इस प्रकार जैन धर्म के प्राणभूत वीतरागभाव एवं सर्वज्ञभाव सर्व रूप से अथवा अधिकाश रूप से इन पाचो पदो मे स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुए हैं।

अन्य प्रकार से जैन धर्म के मूल तत्त्व तीन है—देवतत्व, गुरुतत्व एवं धर्म तत्त्व। उनमे अरिहंत एव सिद्ध, आत्म-विकास की पूर्ण अवस्था परमात्म दशा पर पहुँचे हुए हैं अत पूर्ण रूप से पूज्य है एव देव तत्त्व की कोटि मे गिने जाते है। आचार्य, उपाध्याय एवं साधु आत्म विकास की अपूर्ण अवस्था मे होते हुए भी पूर्णता हेतु सतत प्रयत्नशील होने से पूज्य हैं एव अपनी ऊची श्रेणी वालों के वे पूजक भी है अतः उनका गुरुतत्त्व मे समावेश किया गया है। पुनः सर्वज्ञ व्यक्ति से भाव रूप मे लक्षणा की जा सकती है अतः अरिहतादि

उन उन पदों की लक्षणा से अर्हद्भाव, सिद्धभाव, आचार्यभाव, उपाध्यायभाव एव साधुभाव ग्रहण किए जा सकते है। इसका यह अर्थ है कि यह नमस्कार अर्हद्भाव को है। इस प्रकार लक्षणा से पाचों मे स्थित अर्हदादि भाव, नमस्कार का लक्ष्य बिन्दु है एव यह भाव ही धर्म-तत्व है। अहिंसादि धर्म एव ज्ञानादि आत्म-भाव पाचो पदों के प्राण हैं, अर्थात् नमस्कार मत्र मे देव-तत्त्व एव गुरुतत्त्व के साथ धर्मतत्त्व का भी अन्तर्भाव हो जाता है एव देवतत्त्व तथा गुरुतत्त्व के साथ धर्मतत्त्व को भी नमस्कार कर लिया जाता है।

यह नमस्कार सूत्र समस्त जैनी आराधनाओ का केन्द्र है। अरिहतादि पाच पद एव उनमे निहित भाव सर्वसाधको के लिए आराध्य है। अत. प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ मे सर्व प्रथम उनको नमस्कार करने के द्वारा श्रद्धाञ्जलि अर्पित की जाती है। उठते समय, सोते समय, शुभ कार्य करते समय, स्वाध्याय करते समय, प्रतिक्रमण के समय, विहार के समय अथवा गोचरी के समय सर्वत्र नमस्कार महामत्र की मगलध्वनि गूजती ही रहती है। प्रत्येक कार्य करते समय महान् पवित्र आत्माओ के प्रति श्रद्धा-भक्ति प्रदर्शित करने से मोहान्धकार दूर होता है। अज्ञान, सशय, विपर्यय आदि अज्ञान का नाश होता है। इससे आत्मशक्ति का विकाश होता है जिससे दु खो का अन्त होता है। दु ख का मूल अज्ञान मे, सशय मे अथवा विपरीत ज्ञान मे है। अत इससे आत्मशक्ति का ह्रास होता है। जहाँ इन सबका अभाव हो वहाँ दु ख नही टिक सकता।

अन्त मे, वस्तु चाहे जितनी महत्त्वपूर्ण हो पर जब तक उसके महत्त्व का व्यवस्थित रीति से निरूपण नही किया जावे तब तक जनसमूह का उसके प्रति आकर्षण नही हो सकता। इस उपदेश की पूर्ति हेतु श्री नमस्कार महामत्र की चूलिका है। चूलिका मे पाचो परमेष्ठियो को किए नमस्कार का फल प्रकट रूप से दर्शित किया गया है। सर्व विघ्नो का नाश एव सर्व मगलो का आगमन इन पाचो को किए गए नमस्कार का स्पष्ट फल है। इस प्रकार चूलिका सहित मूल मत्र श्री पच मंगल महाश्रुत स्कन्ध रूप मे जैन आम्नाय मे प्रसिद्ध है।

★

नमस्कार महामन्त्र की सर्वश्रेष्ठ उपादेयता

किसी भी वस्तु की उपादेयता उसके फल पर अवलम्बित है। जिसका फल सर्वश्रेष्ठ हो उसी के विषय मे वुद्धिमान् पुरुषों की प्रवृत्ति सर्वाधिक होती है यह नियम सभी क्षेत्रो मे एक समान प्रवर्तित है फिर भले ही वह क्षेत्र धार्मिक हो अथवा सासारिक। जिससे उभय लोक का कल्याण सिद्ध होता हो वह धार्मिक क्षेत्र कहलाता है। जिससे केवल इस लोक मे सुख की सिद्धि हो वह क्षेत्र सासारिक है। इस लोक के समस्त प्रयोजनो की सिद्धि का उपाय मुख्य रूप से धन है अतः धनोपार्जन हेतु ससारी लोगो की प्रवृत्ति विशेष रूप से झुकी रहती है। जिनका इस लोक के साथ परलोक के प्रयोजन की सिद्धि का भी हेतु स्थित हो वे धनार्जन के साथ धर्मोपार्जन हेतु भी सतत प्रयत्नशील रहते है। जिस प्रकार धनार्थी सभी प्रकार के धन मे रत्नो को मुख्य स्थान प्रदान करता है क्योकि उसका भार अल्प एव मूल्य अधिक होता है वैसे ही धर्म का अर्थी वुद्धिमान् मनुष्य भी हमेशा अल्पभारी एव वहुमूल्य वस्तु को ही अधिक चाहता है।

श्री नमस्कार महामन्त्र को शास्त्रकारो ने ऐसी ही उपमा प्रदान कर उसकी स्तुति की है। कहा है कि :

> रत्नतणी जेम पेटी भार अल्प वहुमूल्य,
> चौद पूर्वनो सार ओ मत्र छे तेहने तुल्य,
> सकल समय अभ्यन्तर पद ओ पच प्रमाण,
> महासुअखध ते जाणो चूला सहित सुजाण।

उपाध्याय श्री यशोविजयजी म०

यहाँ नमस्कार मत्र को केवल रत्न ही नही पर रत्नो की पेटी कहा है एवं उसके प्रत्येक अक्षरों को महामूल्यवान् रत्नरूप मे उपमा प्रदान की है। इससे भी आगे वढकर नमस्कार मत्र को चौदहपूर्व के

तुल्य कहा गया है क्योकि चौदहपूर्वो द्वारा ज्ञानी पुरुषों को जो प्रयोजन साधना इष्ट हो वह अवस्था विशेष मे केवल एक नमस्कार मत्र से सिद्ध हो जाता है। नमस्कार मत्र के प्रथम पाँच पद समस्त सिद्धान्तो से समन्वित है क्योकि इन पाँच पदो का स्मरण, ध्यान, उच्चारण किए विना किसी सिद्धान्त का पठन नही हो सकता। श्रुत-केवली भगवान् श्री भद्रबाहु-स्वामीजी ने सर्वप्रथम श्री नमस्कार मत्र की निर्युक्ति की रचना की थी एवं उसके पूर्व अथवा उसके पश्चात् किसी भी सूत्र की व्याख्या करने से पूर्व सबसे पहले श्री नमस्कारमत्र की व्याख्या आदि करना ही शिष्ट पुरुषो की मान्य परम्परा है। प्रारम्भ के पाँचो पद एव चूलिका के चारो पद मिलाकर सम्पूर्ण श्री नमस्कारमत्र को श्री महानिशीथ आदि मान्य आगमो मे महाश्रुत-स्कन्ध रूप मे वर्णित किया गया है एव उसके अतिरिक्त अन्य आगमो को केवल श्रुतस्कन्ध रूप मे सम्बोधित किया गया है।

श्री महानिशीथ सिद्धान्त मे इस नमस्कार महामत्र को स्पष्ट रीति से नवपद, अडसठ अक्षर एव आठ सम्पदा वाला कहा गया है। कहा गया है कि यह नमस्कार मत्र, जिसका दूसरा नाम श्री पच मंगल महाश्रुतस्कन्ध है, का व्याख्यान महा प्रबन्ध (विस्तार) से, सूत्र से पृथग्भूत निर्युक्ति, भाष्य एवं चूर्णिका द्वारा अनन्तगमपर्यव सहित जिस प्रकार से अनन्त ज्ञान-दर्शनधारी श्री तीर्थंकर देव द्वारा किया गया है उसी प्रकार सक्षेप मे करवाया गया था, परन्तु काल-परिहाणि दोष से वे निर्युक्ति, भाष्य एव चूर्णिकाएं विच्छेदित हो गई हैं। बीते हुए कालसमय मे बडी पदानुसारी ऋद्धि का धारण करने वाले एवं द्वादशांग सूत्र को धारण करने वाले श्री वज्रस्वामी हुए। उन्होने इस श्री पचमगल महाश्रुतस्कन्ध का उद्धार कर श्री महानिशीथ सूत्र मे मूल सूत्र को लिखा। यह श्री महानिशीथ श्रुतस्कन्ध समस्त प्रवचन का सारभूत परम तत्त्वभूत तथा अतिशय सम्पन्न अत्यन्त महान् अर्थ से समन्वित है। इसमे निम्न प्रकार से श्री नमस्कार सूत्र का व्याख्यान किया गया है।

प्रश्न हे भगवन्! इस अचिंत्य चिंतामणि कल्प श्री पचमगल-महाश्रुत स्कन्ध का क्या अर्थ है?

उत्तर हे गौतम ! अचित्य चितामणिकल्प श्री पचमगल-महाश्रुतस्कन्ध सूत्र का अर्थ इस प्रकार कहा गया है : यह पचमगल महाश्रुत स्कन्ध तिलो मे तेल की तरह, कमल मे मकरन्द की तरह एव लोक मे पचास्तिकाय की तरह सकल आगमो के अन्तर्गत स्थित है एव वह यथार्थ क्रियानुवाद-सद्भूतगुण कीर्तन स्वरूप तथा यथेच्छ फल प्रसाधक परम स्तुतिवाद रूप मे है। जगत् मे उत्तम पुरुषो की परम स्तुति करनी चाहिए। जगत् मे जो कोई उत्तम पुरुष हुए है, हो रहे है एव होगे वे सब अरिहतादि पाच ही हैं, उनके सिवाय दूसरे है ही नही। वे पाच अनुक्रम से अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एव साधु है। उन पाचो का गाम्भीर्य-सद्भाव अर्थात् परम रहस्यभूत अर्थ निम्नानुसार है।" तत्पश्चात् चूलिका सहित पाचो पदो का विस्तृत अर्थ बताकर अन्त मे कहा है कि :

"ताव न जायइ चित्तेण, चितिअं पत्थिअ च वायाए।
काएण समाढत्ता, जाव न सरिओ नमुक्कारो ॥"

अर्थ : चित्त से चिन्तित, वचन से प्रार्थित एव काया से प्रारब्ध कार्य तब तक सिद्ध नही होता कि जब तक श्री पच परमेष्ठि नमस्कार का स्मरण नही किया जाता।

वर्तमान श्री महानिशीथ सूत्र की मूल प्रति आचार्य श्री हरिभद्र-सूरिजी ने मथुरा नगरी मे श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी के स्तूप के समक्ष पन्द्रह दिन उपवास कर शासन देवता के पास से प्राप्त की थी परन्तु दीमक आदि द्वारा खडित एव सड़े हुए पत्तो वाली होने से उन्होंने उसका सशोधन अपनी बुद्धि के अनुसार किया है। उसको दूसरे युग प्रधान श्रुतधर आचार्यो ने भी माना है।

पच परमेष्ठिओ को नमस्कार रूप यह नमस्कार मत्र सभी मत्रो मे शिरोमणिभूत गिना जाता है। इसे छोड़कर स्वतत्र रूप से दूसरे मत्रो का सेवित किया जाना कल्पवृक्ष को छोड़कर काटेदार वृक्ष को सेवित करने के समान अनिष्टफल प्रदाता के रूप मे शास्त्रो मे वर्णित किया गया है। कहा है कि :

तजे ए सार नवकार मंत्र, जे अवर मत्र सेवे स्वतंत्र;
कर्म प्रतिकूल बाउल सेवे, तेह सुरतरु त्यजी आप टेवे ॥१॥

नमस्कार मंत्र का यह महत्त्व यथार्थ रीति से समझने हेतु, शास्त्रदृष्टि, आगम दृष्टि अथवा आगमानुसारी अतिसूक्ष्म ज्ञान दृष्टि की आवश्यकता है। सभी कालो के स्व-पर आगम वेदी श्रुतधर महर्षियो ने अडसठ अक्षर प्रमाण मात्र इस छोटे से सूत्र को महामत्र एव महाश्रुतस्कन्ध रूप मे स्वीकार किया है, उसके मुख्य कारणो पर विचार करते हुए यह प्रतीत होता है कि धनवान् की सेवा के बिना जिस प्रकार धन सिद्धि नही होती वैसे ही धर्मवान् की सेवा के बिना धर्म की सिद्धि भी अशक्य है। पू० श्री हरिभद्रसूरिजी म० 'ललित विस्तरा' नामक चैत्यवन्दन सूत्र की टीका मे कहते है कि. "धर्म प्रति मूलभूता वन्दना" अर्थात् धर्म मार्ग मे जीव को आगे बढाने मे मूलभूत कारण कोई भी हो पर वह धर्म सिद्ध पुरुषो को भाव से की गई वन्दना ही है। इस वन्दना से आत्मक्षेत्र मे धर्मबीज का वपन होता है एव उसमे से धर्मचिन्तादि रूप अकुर तथा धर्मश्रवण एव धर्माचरण आदि रूप शाखा प्रशाखाओ तथा स्वर्गापवर्ग आदि के सुखो की प्राप्ति रूप फूल-फलादि प्रकट होते है।

अरिहतादि पाचो परमेष्ठिओ का महत्त्व केवल धर्मसिद्धि एवं धर्म की साधना के कार्य पर अवलम्बित है। इसलिए धन के अर्थी जीवो के धनवान् के प्रति आदर की भाति धर्म के अर्थी आत्माओ के लिए धर्म साधक एव धर्म सिद्ध पुरुषो के प्रति आदर का कार्य अनिवार्य हो जाता है। दूसरे शब्दो मे जिनको धनवान् के प्रति आदर-बहुमान नही वह धनार्थी है यह सिद्ध नही होता वैसे ही धर्मवान् के प्रति जिसके मन मे अंतरग आदर भक्ति जाग्रत नही होती उसे धर्म का चाहक भी माना नही जा सकता। धर्म के चाहक के लिए जिस प्रकार धर्म स्वरूप पच परमेष्ठियो को नित्य अनेकश. नमस्कार करने का कार्य अनिवार्य हो जाता है वैसे ही जिनमे धर्म की चाहना उस प्रमाण मे जाग्रत नही हुई उनमे भी उसे जगाने हेतु परम परमेष्ठियों को नमस्कार स्वरूप नमस्कार मत्र स्मरणादि का अवलम्बन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। धर्म के प्रति प्रीति किसी के लिए सहज सिद्ध

४

होती है तो किसी के लिए प्रयत्न साध्य भी होती है। यह दोनों प्रकार की प्रीति नमस्कार द्वारा सिद्ध होती है। इसलिए धर्मरूपी आन्तर धन की लालसा वाले सत्पुरुष नमस्कार के प्रति सदा आदर युक्त चित्त वाले रहे तो इसमे लेशमात्र भी आश्चर्य नही।

अकगणित मे १ (एक) की सख्या को जितना महत्व प्राप्त है उतना ही महत्व धर्म क्षेत्र मे परमेष्ठि नमस्कार को प्राप्त है। धर्ममय एव धर्मस्वरूप परमेष्ठियो के प्रति नमन के भाव रहित धर्मानुष्ठान भी शून्य है एव निष्फल है। राख पर की लिपाई अथवा ऊबड़ खावड भीति पर चित्रकारी जिस प्रकार टिक नही सकती वैसे ही धर्मियो को नमस्कार रहित धर्मानुष्ठान भी क्षण जीवी होता है। मूलरहित वृक्ष अथवा नीव रहित मकान नाश के लिए ही सर्जित है वैसे ही परमेष्ठियो के प्रति भक्ति भाव रहित तप, जप, श्रुत अथवा चारित्र भी फल के अनुबन्ध रहित है, ऊँचा चढाकर नीचे पटकने वाला है। इसी अर्थ को वताने वाली गाथा श्री नमस्कार वृहद् फल प्रकरण मे नीचे माफिक कही गई है

सुचिरपि तवो तविय, चिन्न चरण सुय च बहु पढिय ।
जइ ता न नमुक्कारे, रई तओ त गय विहल ॥१॥

अर्थ दीर्घकाल तक तप तपने, चारित्र पालने तथा बहुत शास्त्रो को पढने पर भी यदि नमस्कार के प्रति प्रेम जाग्रत नही हुआ तो यह जानो कि सव निष्फल है।

चतुरग सेना मे जिस प्रकार सेनानी मुख्य है वैसे ही दर्शन, ज्ञान, चारित्र एव तपरूपी चतुरग आराधना मे नमस्कार मत्र मुख्य है अथवा नमस्कार रूपी सारथि से चालित एव ज्ञान रूपी अश्व से सयुक्त तप, नियम तथा सयम रूपी रथ जीव को मुक्ति नगरी तक पहुँचाने मे समर्थ हो सकता है। यह शास्त्रकारो का सिद्धान्त है। अतः श्री जिन शासन मे श्री नमस्कार महामत्र को सवसे विशिष्ट स्थान प्रदान किया गया है एव सभी आराधनाओ मे उसकी गणना मुख्य रूप से मानी गई है। "नवलाख जपता नरक निवारे" इत्यादि अनेक सुभाषित नवकार को श्रेष्ठता को सावित करने हेतु प्रमाणरूप है। अत समय मे श्रुतधरो को

भी शास्त्रकारों का आदेश है कि वे अन्य सब श्रुतों का अवलम्बन छोड़ कर केवल एक नवकार का ही अवलम्बन करें। जब घर में आग लगती है तब घर का स्वामी शेष वस्तुओं को छोडकर समर्थ महारत्न को ही ग्रहण करता है अथवा रण संकट मे आपत्ति निवारण हेतु समर्थ सुभट भी शेष शस्त्रो को छोडकर केवल एक अमोघ शस्त्र को ही ग्रहण करता है वैसे ही अन्त समय मे महारत्न के समान अथवा कष्ट के समय अमोघ शस्त्र के समान एक श्री नमस्कार मत्र को ही ग्रहण करने का ही शास्त्र वचन है क्योकि उसका भार अल्प है एव मूल्य अधिक है। भार कम इस प्रकार है कि उसके अक्षर अड़सठ ही है। मूल्य अधिक इस कारण है कि यह धर्म के मूल का सिचन करता है।

वह धर्म प्रासाद की नीव का कार्य करता है, धर्मपुर मे प्रवेश के लिए द्वार रूप बन जाता है एव धर्मरत्न के सग्रह हेतु परम निधान का रूप सिद्ध करता है। इसमे यह कारण है कि समस्त जगत् मे उत्तम धर्म को साधे हुए, साध रहे एवं भविष्य मे साधने वाले पुरुषो को यह प्रमाण रूप है, उनके प्रति हार्दिक नियम रूप है, उनके गुणो का भावपूर्वक समुत्कीर्तन स्वरूप है एव यथेच्छ फल को सधवाने वाला है। इस प्रथमाक्षर को सिद्ध किए बिना जो धर्म के अन्य अनुष्ठानो द्वारा यथेच्छ फल प्राप्ति की आशा करते है वे बारहखड़ी पढे बिना ही सकल सिद्धान्त के परगामी होने की मिथ्या आशा रखते हैं। नमस्कार धर्म गणित का प्रथमाक है अथवा धर्म-साहित्य की बारह खडी है। जिस प्रकार अको का अथवा बारह खडी का प्रथम अभ्यास बालक को कष्टदायी प्रतिभासित है वैसे ही धर्म की अक-विद्या या बारहखड़ी स्वरूप नमस्कार का भी यथास्थित अभ्यास बालक तुल्य जीवो के लिए अति कष्ट साध्य एव अरुचिकर लगता है। इस कसौटी पर खरे सिद्ध हुए बिना धर्म मार्ग मे न तो सच्ची प्रगति सिद्ध हुई है, न ही हो सकती है एव न होगी यह त्रिकाल सत्य है। नमस्कार के इस अभ्यास को कठिन या अरुचिकर मानेकर जो छोड देता है अथवा उसकी उपेक्षा करता है वह वास्तव मे अपने धार्मिक जीवन की उपेक्षा करता है।

श्री जैन शासन की प्रत्येक क्रिया के प्रारम्भ मे नमस्कार के

स्मरण का आदेश है। इसके मूल में जो गम्भीर रहस्य छिपा हुआ है वह इससे स्पष्ट होगा। सोते जागते, खाते पीते, जीते मरते, नमस्कार के प्रति चित्त को एकाग्र करने का अभ्यास डालने का भाव शास्त्रानुसारी मध्यस्थ दृष्टि जीवों के ध्यान मे तुरन्त आ सकता है। यह ध्यान आने के पश्चात् आत्म हित के विशेष अर्थी आत्माओ के लिए अधिकाधिक संख्या मे नमस्कार को गिनने का शास्त्रीय प्रतिपादन कितने महत्व का है यह तुरन्त समझ मे आ जाता है।

अन्त मे कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी म० का श्री नमस्कार मन्त्र को वर्णित करने वाला यह अपूर्व श्लोक उद्धृत कर यह लेख पूरा करेंगे। वे कहते हैं कि—

कृत्वा पापसहस्राणि, हत्वा जन्तुशतान्यपि।
अमुं मंत्र समाराध्य, तिर्यञ्चोऽपि दिवगता ॥१॥

अर्थ हजारो पाप एव सैकडो हत्याओ को करने वाले तिर्यञ्च जीव भी इस मन्त्र का सम्यग् रूप से आराधन कर देवगति को प्राप्त हुए है।

जिस प्रकार शास्त्र दृष्टि से नमस्कार अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है वैसे ही मंत्र दृष्टि से उसका अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। उस पर स्वोपज्ञवृत्तियुक्त श्री योग शास्त्र नामक महाग्रंथ मे कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्यजी ने बहुत प्रकाश डाला है। उन्होने नमस्कार मंत्र का विविध रीति से किए जाने वाले जाप का एवं उसके फल का वहाँ विस्तृत विवेचन किया है।

गारुडिक मंत्र जिस प्रकार सर्प के विष का नाश करता है वैसे ही श्री नमस्कार मन्त्र समस्त पापरूपी विष का नाश करता है।

आन्तरिक धन श्री नमस्कार

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्यजी स्वरचित योगशास्त्र के तृतीय प्रकाश मे श्रावक की दिनचर्या का वर्णन करते हुए आदि मे ही कहते हैं :

"ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत् परमेष्ठिस्तुति पठन्"................. . . ..
अर्थात् श्रावक को चाहिए कि वह नमस्कार महामत्र का स्मरण करते हुए, ब्राह्म मुहूर्त मे शय्या का त्याग करे। नमस्कार का अर्थ है विनय का एक प्रकार; विनय का अर्थ है एक ऐसी अद्‌भूत् सामर्थ्य युक्त क्रिया जिसमे आठो कर्मों का विलय हो। विनय का अर्थ है चित्त की अनुस्रोतवृत्ति, आत्मा का एक स्वच्छ परिणाम। क्लिष्ट कर्म का विगम हुए विना नमस्कार का परिणाम उत्पन्न नही होता। इस कारण से नमस्कार का परिणाम आत्मा की निर्मलता का प्रतीक है।

विनय धर्म का मूल है "विणय मूलररा" यह विशेषण धर्म का है एवं "सीचे ते सुधारसेजी धर्म वृक्ष नु मूल" यह भी कहा गया है। इस विनय का फल शुश्रूषा है एव सुश्रूषा का फल श्रुत ज्ञान है। इस प्रकार क्रमश. विरति, आस्त्रव-निरोध, सवर, तप, सर्वसवर एव परिणाम स्वरूप मोक्ष प्राप्त होता है। पुन. "तस्मात् कल्याणाना सर्वेषा भाजन विनय." अर्थात् इस कारण सर्व कल्याणो का भाजन एक विनय गुण है ऐसा दशपूर्व धर श्री उमास्वाति वाचक प्रवर श्रीप्रशमरति प्रकरण मे भी कहते है।

मोक्ष मार्ग मे विनय गुण की इस कारण से प्रधानता है कि उसका परिणाम उत्तरोत्तर अत्यन्त सुन्दर होता है। यह आत्म कल्याण का निर्विघ्न मार्ग है। इस गुण के पालन से ही भगवान् श्री गौतम महाराजा का नाम मगलमय माना जाता है। विनय के विना संसार का कोई भी काय अथवा कला सिद्ध नही होती। विनय गुण के पालन विना कदाचित् ही कोई गुण प्राप्त हो जाय तो भी वह परिणाम में

विनाशक बनता है क्योंकि उसमे खतरा है। इससे अभिमान की पुष्टि होकर परिणाम स्वरूप पतन होता है। अत. विनय का पालन सर्व प्रथम करणीय है।

परमेष्ठि नमस्कार विनय गुण स्वरूप है। नमस्कार का स्वरूप एव नमस्कार से होता लाभ जो इस प्रकार बुद्धिपूर्वक विचारा जाय तो नमस्कार के प्रति रुचि-प्रेम जागे बिना नही रहेगा एव वह यहाँ तक जागेगा कि कोटि कल्प मे भी उसका अन्त नही होगा। वह प्रेम अनन्त, अक्षय एव अभग बन जाता है कारण कि प्रेम का विषय अरिहतादि स्वय ही स्वरूप से अनन्त अक्षय है। कहा है कि

"उदक बिन्दु सायर भल्यो, जेम होय अक्षय अभग;
वाचक यश कहे प्रभु गुणे, तिम मुज प्रेम प्रसंग"
(श्री अनन्तजिन स्तवन)

द्रव्य प्राप्ति आदि हेतु ससार मे जो सोत्साह प्रवृत्ति होती है, उस प्रवृत्ति मे फल का विश्वास है एव इस विश्वास के कारण अनेक बार निष्फलता मिलते हुए भी कभी उत्साह का भग नही होता। यहाँ नमस्कार के फल मे विश्वास नही जगता एव विश्वास के जागृत नही होने से उत्साह प्रकट नही होता है।

यहाँ एक बात और यह भी है कि द्रव्य आदि के स्वरूप का पक्का भान होता है कि द्रव्य मात्र कागज का टुकडा नही परन्तु हजार रुपये का नोट है। सोना चाँदी केवल धातु के टुकड़े नही पर ऐसा डके की चोट ज्ञान होता है कि वे एक ऐसी वस्तु है कि जिनसे सब काम सिद्ध होते है, जिससे कुटुम्ब मे, समाज मे एव राष्ट्र मे स्थान मिलता है एव वह स्थान धन से ही टीकता है। जगत् मे निर्गुणी जीव भी पूजे जाते है उसमे द्रव्य का चमत्कार है, यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है। पुनः सामान्य मनुष्य गुण के पुजारी नही होते पर द्रव्य के पुजारी होते हैं। यह सब प्रत्यक्ष दिखाई देने से उसमे उत्साहपूर्ण प्रवृत्ति, बिना किसी के उपदेश के होती दिखाई देती है। बस ऐसा ही विश्वास यहा आ जाता है कि बाह्य सुख का कारण धन है, पर उस धन का भी कारण धर्म है, तो धन प्राप्ति से धर्म प्राप्ति मे उत्साह बढ़ जाता है। जिसके पास

धर्म रूपी धन है वही वास्तव में धनिक है एवं वतमान में जो धर्म-धन की कमाई कर रहे हैं, वे ही भाग्यशाली है। भविष्य मे वे बडे धनवान् होने वाले हैं। धर्म बिना के धनी भविष्य मे कगाल होने वाले हैं। अज्ञानी जगत् धर्म के फल को देखता है, समझदार मनुष्य धर्म के मूल को प्रधानता देता है। सर्व सिद्धियो का अमोघ बीज धर्म है। नमस्कार से धर्म रूपी कल्पवृक्ष के मूल का सिचन होता है। यह विचार सूक्ष्म रूप से करना चाहिए। यहाँ बुद्धि को बराबर कसना चाहिए क्योकि सूक्ष्म बुद्धि मिलने का खरा फल यही है।

यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि यदि यह नमस्कार धर्म है तो उसकी गिनती किस धर्म मे हो सकती है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि धर्म की आराधना तीन प्रकार से हो सकती है, १ करने से २. करवाने से ३ अनुमोदना के द्वारा। इन तीन प्रकारो के धर्मो मे नमस्कार द्वारा अनुमोदना स्वरूप धर्म का जो तीसरा प्रकार है उसकी आराधना हो सकती है। परिस्थिति ऐसी है कि प्रारम्भ मे धर्म थोडा ही किया जा सकता है क्योकि धर्म महान् है एव करने वाला स्वय तुच्छ है। अपने को जो साधन मिले है वे भी तुच्छ है। अल्प साधनो द्वारा अनत धर्म के प्रारम्भ मे पूर्ण आराधना होनी शक्य नही। व्यक्ति सामर्थ्य के अनुसार धर्म का आचरण कर सकता है परन्तु धर्म वस्तु आन्तरिक रूप से रुचिकर होने से मात्र अपने द्वारा किए गए अल्प धर्म से उसे सन्तोष नही होता। अर्थात् "दूसरे भी इस सुन्दर वस्तु को करे" ऐसी भावना से स्वय को जो कोई सामग्री मिली है उसका उसमे उल्लास से सदुपयोग करता है एव मानता है कि इन नश्वर साधनो द्वारा यदि किसी को धर्म मार्ग मे स्थिर किया जा सकता हो तो वही उसका वास्तविक फल है। मिट्टी मे से सोना प्राप्त करने जैसा उसे लगता है एव ऐसी भावना से उसकी आत्मा को एक बड़ा लाभ होता है। धर्म प्रेम के लिए धर्म हेतु अपनी सामग्री का उपयोग करने से ऐसा शुभानुबधी पुण्य बध जाता है कि जन्मान्तर मे उसे उत्तम कुल सुदेव-गुरु-धर्म का योग अनायास ही मिलता है, रुचिकर लगता है, पालने का सामर्थ्य प्रकट होता है एव ऐसे सुयोग मिलते है कि जिससे वर्तमान की कमियाँ टल जाती है। यह करवाने रूप धर्म का फल है। मात्र करने से एव करवाने से ही धर्म के प्रकर्ष को पहुँचा जाय ऐसा नही, पर

तीसरे प्रकार अनुमोदना द्वारा चित्त को सन्तुष्ट करने वाली आराधना की जा सकती है। करने मे यथाशक्ति शर्त है, करवाने मे यद्यपि अनेको को कराया जा सकता है तो भी उसमे सीमा है, यह सब करना, करवाना इकट्ठा कर दिया जाय तो भी अनुमोदना रूप धर्म के सामने सागर के सामने एक बिंदु तुल्य भी नही होता है क्योकि अनुमोदना मे देश-काल अथवा द्रव्य का कोई प्रतिबन्ध नही। वर्तमान मे अपने आस-पास होते धर्म की अनुमोदना हो सकती है, वैसे ही भूतकाल मे दूसरो द्वारा आचरित धर्म की भी हो सकती है। परिपूर्ण धर्म का जिन्होने आचरण किया है अथवा भविष्य मे भी यदि आचरण करने वाले है, उनकी भी अनुमोदना हो सकती है। इस भरत क्षेत्र के अतिरिक्त महाविदेह आदि क्षेत्रो मे विचरण करते वर्तमान तीर्थकरो के धर्म की भी अनुमोदना हो सकती है। सक्षेप मे सर्वकाल मे एव सर्वक्षेत्र मे हुए, हो रहे एव होने वाले धर्म की आराधना हेतु अनुमोदना स्वरूप धर्म की आराधना के अतिरिक्त दूसरा उपाय नही है। काल का प्रारम्भ नही और अनादि काल से सर्व क्षेत्रो मे धर्माराधन होता आया है। उसमे परिपूर्ण धर्म को साधने वाली भी अनत आत्माए हुई है। वे सभी अरिहत भगवन्त, सिद्ध भगवन्त, आचार्य भगवन्त, उपाध्याय भगवन्त, साधु भगवन्त देशविरति धर्म पालने वाले, सम्यग् दृष्टि देव-मनुष्य आदि के एव मार्गानुसारी आदि जीवो के धर्मो की आराधना अनुमोदना के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार से होनी सम्भव नही। इन सब के धर्म का योग अनत अनत हो जाता है।

अनुमोदना करने वाला जिसकी अनुमोदना करता है उसके धर्म का भागीदार बन जाता है। अनुमोदना रुचि के बिना नही होती और जिसकी जैसी रुचि हो उसी के अनुसार उसका निर्माण होता है। अनुमोदना से जीव का शुभ पुण्य इतना अधिक बढ जाता है कि वह स्वय आज एक बिन्दु स्वरूप है पर अनुमोदना रूप धर्म मे मिल जाने से अक्षय, अनत सागर स्वरूप बन जाता है।

अनुमोदना के अनन्तफल को ध्यान मे रखकर शास्त्रकारो ने नमस्कार मन्त्र का माहात्म्य गाया है। नमस्कार के एक एक अक्षर के स्मरण से सात सात सागरोपम के पाप टलते है। यह फल भी व्यवहार से ही है एव यह फल अति अल्प गिना जाता है। वस्तुत.

नमस्कार के एक एक अक्षर के स्मरण से प्रत्येक समय अनन्त अनन्त पाप की रज टलती है और जीव सर्व कर्मों का विच्छेद कर अल्प समय मे मोक्ष के अनन्त सुख को प्राप्त करता है, यह उसका परमार्थ फल है। जीव की मुक्ति आज तक हुई नही इस का कारण यह है कि नमस्कार मन्त्र मे नमनीय पच परमेष्ठियों को भावपूर्वक एक बार भी जीव नमा नही। अन्तर से उनके प्रति नम्र बना नही। परमेष्ठियो को भावपूर्वक नमने के परिणाम के अतिरिक्त जो धर्म क्रिया होती है वह विशुद्ध नही परन्तु अशुद्ध है; अभिमान की वृद्धि हेतु है। आराधना के बढने के साथ नम्रता बढ़ती है तो समझना चाहिए कि धर्म की वृद्धि हो रही है। पर अधिकाशत. जीव नम्र बनने हेतु नही सबसे अधिक श्रेष्ठ बनने और सभी को नमाने हेतु प्रयत्न करता है। एव इस कारण से धर्म प्रवृति मे भी जहाँ नमना चाहिए वहाँ उसमे नम्रता का भाव नही आता। यह सब अज्ञान जनित अन्धापन है एव उस अन्धेपन की पुष्टि होती ही जाती है। अत नम्र बना नही जाता एव नम्र बने बिना धर्म प्रवेश नही पा सकता। यदि गुणानुरागिणी दृष्टि हो जाय तो भावान्धता टल सकती है। यदि अपने मे भरे हुए दोष एव अशुद्धियाँ ध्यान मे आ जाँय तो गुणानुरागिणी दृष्टि भी उत्पन्न हो सकती है। दृष्टि गुणानुरागिणी बन जाता है तब गुणगणमणि के भडार सदृश अरिहत, आदि उनको हजारो सूर्यों से भी देदीप्यमान-भासमान होता है, एव भासमान होने के पश्चात् जब लघुता-नम्रता एव अपना असामर्थ्य सच्ची रीति से ध्यान मे आ जाय तो इस नमस्कार के लिए चितामणि एव कल्पवल्लरी की उपमा भी तुच्छ लगती है एव अनादि का अन्तर का अन्धकार उलीचा जा सकता है। पुनः जगत् मे अरिहतादि पच परमेष्ठियोने अपने जीवन मे कैसा पुरुषार्थ किया है एव आन्तरिक शत्रुओ को जीतने हेतु कैसे कैसे सग्राम लड़े है, कैसी कठोर साधना की है, अज्ञान मे मग्न हुए जगत् पर इनकी कैसी करुणा है, इन सबका सच्चा ख्याल आने के पश्चात् उनकी सब चेष्टाएँ करुणा रस की मूर्ति के समान प्रतीत होती हैं। उनकी समस्त प्रवृत्तियाँ केवल जगत्-कल्याण हेतु प्रति-भासित होती हैं एव इनके पुरुषार्थ का विचार किया जाय तो महान् आश्चर्य होता है। अथवा ऐसे कटु ससार मे भी अमृतकुम्भ के समान आत्माए किस-

प्रकार उत्पन्न होती होंगी ? जगत् के स्वार्थमय शिक्षण से विलक्षण परमार्थका शिक्षण इन्हे किसने प्रदान किया था ? जगत् के बीच मे रहकर अपने मार्ग मे किस प्रकार टिक कर रहे होंगे ? उनका आन्तर-बल कितना होगा ? अपार दुःख सहन करते समय भी आनन्द मे मग्न रहकर जगत् के दुःख पर विजय प्राप्त करवाने का मार्ग ऐसे पुरुषो के अतिरिक्त दूसरा कौन बताता ? आज जो कोई सुख शान्ति, दान दया, परोपकार अथवा धर्म दिखाई देता है वह उनके बिना उत्पन्न भी नही हो सकता है । इस प्रकार जहाँ कही जो कुछ अच्छा है वहाँ प्रत्येक स्थान पर इनकी करुणा का दर्शन हो सकता है । सर्वत्र अच्छा कहाँ से पैदा हुआ ? उसका उत्तर यह आता है कि यह सब एक छोटे नमस्कार मन्त्र से उत्पन्न हुआ है ।

यदि नमस्कार मंत्र नही होता तो कदाचित् जगत् भले ही होता पर जगत मे अच्छा-श्रेष्ठ तो नही होता । जगत् मे जो कुछ अच्छा है उसे नमस्कार मन्त्र ने पैदा किया है, टिकाया है । उसका यश यदि दूसरे लेने जाते हैं तो उसमे उनका अज्ञान ही कारणभूत है ।

नमस्कार मन्त्र कितना व्यापक है ? शासन तो अरिहत का कहा जाता है, ये अरिहत भी नमस्कार के मात्र एक अश रूप हैं । अनन्त अरिहत भी नमस्कार मन्त्र के मात्र एक अश हैं । सभी जिन मन्दिर भी नमस्कार मन्त्र के एक अश के भी अश है । सभी साधु भी नमस्कार के अन्तर्गत आ जाते है । यदि जगत् मे कुछ अच्छा है तो वह सब नमस्कार रूपी ईश्वर का सर्जन है । नमस्कार मन्त्र मे तीनो भुवनो की सभी अच्छी वस्तुएँ आ जाती है ।

परमेष्ठि महान् ऐश्वर्यशाली है । उनको नमस्कार करने से आत्मा मे गुण-लक्ष्मी उभरने लगती है ।

बीजो मे अंकुरित होने की योग्यता तो है पर उस हेतु योग्य सामग्री की अपेक्षा होती है । वैसे ही आत्मा मे गुण-लक्ष्मी ठूस ठूस कर भरी हुई है पर उसे प्रकट करने हेतु सामग्री की आवश्यकता होगी । उन सामग्रियो मे से एक श्री पचपरमेष्ठियो को नमस्कार

करना ही है। जिनेश्वरों को भाव से नमस्कार करना ही गुण लक्ष्मी को प्रकट करने का एक मुख्य उपाय है। कहा है.

"योगना बीज तिहां ग्रहे जिनवर शुद्ध प्रणामो रे"

नमस्कार की क्रिया से अनादि काल की दरिद्रता टल जाती है एवं आत्मिक गुणो के प्रवाह के प्रवाह उमड़ने लगते है। आन्तर-सम्पत्ति का दर्शन होने से उसे बाह्य वस्तु की कमी की दीनता नही रहती। अत कहा जाता है कि नमस्कार को गिनने वाला कभी भी दीन नही होता है। कहा है कि प्रभु की पहिचान होने के साथ ही सभी प्रकार की दीनता चली जाती है। इससे आराधक आत्माएं मुख्य माग करती है कि :

"जिनधर्मविनिर्मुक्तो, मा भुव चक्रवर्त्यपि" अर्थात् जिन धर्म से रहित मैं, चक्रवर्ती भी नही होना चाहता।

नमस्कार मत्र एक आन्तरिक धन है। पुण्यानुबधी पुण्य के उदय से उसकी प्राप्ति होती है।

क्या नमस्कार महामत्र महारत्न है? चिन्तामणि है? अथवा क्या यह कल्पवृक्ष है? नही नही नही वह सर्वाधिक है। चिन्तामणि आदि रत्न एक जन्म मे सुख प्रदान करते है जबकि प्रवर परमेष्ठि नमस्कार महाम त्र स्वर्ग एव अपवर्ग को भी प्रदान करता है।

नमस्कार की धारणा

शरीर के बाहर अथवा अन्दर किसी एक स्थान मे मनोवृत्ति को एकाग्र करने हेतु प्रयत्न करने का नाम ही धारणा है। कहा है कि

"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा" अर्थात् चित्त को किसी एक स्थान पर बाधना ही धारणा है। धारणा के अभ्यासी को सिद्धासन, पद्मासन अथवा स्वस्तिकासन आदि मे से किसी एक आसन पर बैठ कर इन्द्रियो एव मन को स्वस्थ करना चाहिए। नमस्कार की धारणा मुख्य रूप से नमस्कार मत्र के अक्षरों पर अथवा पच परमेष्ठियो की आकृतियो पर करनी चाहिए एवं उन मूर्तियो अथवा अक्षरो को शरीर मे अथवा बाहर अष्ट दल कमल पर स्थापित करना चाहिए। इस धारणा को प्रारम्भ करने से पूर्व संसार के सभी विषयो के प्रति वैराग्य एव पच परमेष्ठियो के प्रति परम अनुराग प्रकट करना चाहिए। जहाँ ससार के सभी पदार्थ अनित्य, अशरण एव दु:खदायक हैं वहाँ पच परमेष्ठि भगवान्, शाश्वत, शरणभूत एव मंगलदायक हैं।

धारणा का अभ्यास करते हुए वृत्ति मे दो मुख्य दोष आते है, एक लय एव दूसरा विक्षेप। निद्राधीनता लय है एव धारणा के विषय से अन्य विषय के आकार मे चित्त का परिणमन होना विक्षेप है। अजीर्ण, अल्पाहार, अतिश्रम आदि दोष लय के कारण है।

उनका नाश करने हेतु हित-मित्त-भोजी होना, शक्ति से अधिक श्रम का त्याग करना, उचित निद्रा लेना तथा चित्त का तमोगुण जिस प्रकार कम हो वैसे आहार विहारादि का अभ्यास डालना चाहिये। विक्षेप दोष टालने हेतु एकाग्रता का अभ्यास डालना आवश्यक है एव वैराग्य तथा समभाव की भावना बढानी चाहिए। लय एव विक्षेप से अलग चित्त का एक तीसरा दोष भी है उसे कषाय कहते है। कषाय का अर्थ है तीव्र राग द्वेष, उसे धीरता एव सावधानी

से दूर करना। राग के हेतु अनुकूल शब्दादि विषय है एवं उसके हेतुभूत शरीर, धन, धान्य तथा स्त्री-पुत्रादि हैं, द्वेष के हेतु उन्ही के प्रतिकूल विषय है। विषय की असारता, तुच्छता एवं अपकारकता का पुनः पुनः विचार करने से कषाय दोष अर्थात् राग द्वेष की तीव्रता टल जाती है।

इस प्रकार धारणा का अभ्यास दृढ करने हेतु विषय विराग प्रबल करना चाहिए एवं ध्येय मे प्रीति को दृढ करना चाहिए। ज्यो ज्यो लय विक्षेप एव कषाय दोष का सम्भव ज्ञात हो त्यो त्यो उसके प्रतिपक्षी उपायो द्वारा उसका निवारण करते रहना चाहिए।

धारणा का अभ्यास करने के पश्चात् प्रारम्भ के कितने ही दिन तक चित्त कुछ समय तक ध्येयाकार स्थिति मे, कुछ समय तक लयावस्था मे, कुछ समय तक विक्षेपावस्था मे व कुछ समय तक कषायावस्था मे रहता है। ज्यो ज्यो वैराग्य भावना बढती जाती है एव ध्येय विषय मे प्रीति जमती जाती है त्यो त्यो लय विक्षेप एव कषायादि न्यून होने लगते है एवं धारणा का अभ्यास परिपक्व अवस्था प्राप्त होने से ध्यानाभ्यास का अधिकारी बना जाता है।

धारणा सिद्धि हेतु वैराग्य भावना एव भक्ति भावना को प्रबल बनाना आवश्यक है। वैराग्य भावना द्वारा विषय तृष्णा का उच्छेद होता है एव भक्ति भावना द्वारा धर्म विषयक अरुचि एव प्रमाद दोष टल जाता है। ससार मे जीव के लिए एक तरफ पच विषय हैं एव दूसरी तरफ पच परमेष्ठि है। पच विषयो का आकर्षण अनादि का है। पच परमेष्ठि का आकर्षण अभ्यास से साध्य है। विषयो के आकर्षण से जीव राग द्वेष के वश हो अनन्त कर्मो का उपार्जन करता है एव परमेष्ठियो पर के भक्ति भाव से जीव अनन्त अनन्त कर्मो का क्षय करता है। कर्म के सचय से जीव जन्म मरण के चक्कर मे पडता है एव कर्म के क्षय से जन्म मरण के चक्कर से मुक्ति प्राप्त करता है। इस तत्त्व को समझ कर साधक को शास्त्र एव गुरु के उपदेशानुसार पच परमेष्ठि नमस्कार की धारणा का अभ्यास करना चाहिए। चित्त मे विषय राग के स्थान पर भक्ति राग समायोजित करने हेतु श्रद्धा, उत्साह एवं सावधानता पूर्वक प्रयत्न करना चाहिए।

नमस्कार महामंत्र का ध्यान

'ध्यान चैकाग्रय संविति ।'

(श्री ज्ञानसार, ध्यानाष्टक)

ध्यान का अर्थ है एकाग्र बुद्धि । अर्थात् विजातीय ज्ञान के अन्तर रहित सजातीय ज्ञान की धारा ही ध्यान है। धारणा मे ज्ञान की धारा बीच बीच मे विच्छेदित हो जाती है वहाँ ध्यान मे ऐसा नही होता । पातञ्जल योग सूत्र के अनुसार धारणा के विषय मे चित्त की वृत्तियो के प्रवाह को तेल की धारा की तरह अविच्छिन्न रूप से चालू रखना ही ध्यान है ।

"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्"

(पातञ्जल योग दर्शन सू. २-३)

चक्षु आदि इन्द्रियाँ अपने रूप आदि विषयो की तरफ स्वभाव से ही प्रबल वेग द्वारा धसा करती हैं । इन्द्रियो का अनुसरण करने वाला मन भी रात दिन विषय चिन्तन मे ही प्रवृत्त रहता है। अत. ध्यान का अभ्यास करने वाले को विषयो की तरफ जाते हुए मन तथा इन्द्रियो को विषयो मे दोष दर्शन रूपी वैराग्य दृष्टि द्वारा रोकना चाहिए। विषयप्रवण मन की विषयप्रवणता, विषयो की असत्यता असारता एव अपकारकता का विचार करने से अटक जाती है एव इन्द्रियो की चपलता मन की सावधानता, दृढता तथा धीरता द्वारा जीती जाती है।

प्रशस्त विषय के ध्यान का अभ्यास बढने से अन्त.करण की योग्यता बढती है, ज्ञान एवं आनन्द की वृद्धि अनुभव की जाती है; इद्रियाँ तथा शरीर सात्विक बनते हैं तथा ध्यान के अभ्यास रूप पुण्य के प्रकर्ष से बाह्य व्यवहार भी अनुकूल बन जाते हैं ।

थके बिना नियमित अभ्यास करने से समय बीतने के साथ ज्यो बड़े बड़े ग्र थो का अध्ययन किया जा सकता है, नित्य नियम पूर्वक

ऊंचे चढने से ज्यों बडे बड़े पर्वत लांघे जा सकते हैं, नित्य उत्साह पूर्वक चलते रहने से जिस प्रकार समस्त पृथ्वी की प्रदक्षिणा पूरी की जा सकती है वैसे ही आग्रह पूर्वक उद्विग्न हुए बिना नियमित अभ्यास चालू रखने से समय पर अनेक विषयाकार मे परिणमित होने के मन के स्वभाव को पलट कर एक ही ध्येय के आकार मे स्थिर रखा जा सकता है।

मन चिरकाल से अनेक विषयो के आकार मे परिणमित होने का आदी हो गया है। उसे एक ही ध्येयाकार मे स्थिर करने का काम अति कठिन है फिर भी आग्रह युक्त प्रयत्न से जिस प्रकार दूसरे बडे काम सहज हो जाते है वैसे ही यह कार्य भी सुकर वन जाता है। ध्यानाभ्यासी को लेशमात्र भी थके विना नित्य नवनवीन उत्साहपूर्वक ध्यानाभासी रूप कार्य प्रारम्भ रखना चाहिए। ध्यानाभ्यासो को योग्य प्रयत्न-पूर्वक अपने मन को शुद्ध ध्येय से जोडने हेतु प्रयत्न चालू रखना चाहिए जिससे स्थूल एव चचल मन को ध्यान के वल से सूक्ष्म एव एकाग्र करने मे अवश्य सफलता प्राप्त की जा सकती है।

अशुद्ध मन को शुद्ध करने का एव चचल मन को स्थिर करने का कार्य अति दुष्कर है तो भी पच परमेष्ठि के ध्यान से एव भक्ति पूर्वक के नमस्कार से वह सुलभ वनता है क्योकि पच परमेष्ठि शुद्ध स्वरूपी, स्थिर एव शाश्वत है।

समुद्र से दूर स्थित स्थान से मनुष्य ज्यो ज्यो समुद्र के समीप आता जाता है त्यो त्यो समुद्र की ओर से आती पवन की शीतल लहरो द्वारा उसका ताप शान्त होता जाता है एव आनद वढता रहता है, वैसे ही ध्यान द्वारा मनुष्य अपने वहिर्मुख मन को जैसे जैसे परमात्मतत्त्व के अभिमुख कर समीप आता जाता है वैसे वैसे अन्त करण मे अपूर्व शान्ति, समता, तृप्ति एव निर्भयता का आनन्द अनुभव किया जाता है। अथवा वड़े राजा के साथ अनुकूल सम्वन्ध से सयुक्त सामान्य मनुष्य की वाह्यान्तर स्थिति मे भी वडा अन्तर पड़ जाता है। वैसे ही ज्ञानानन्दी स्वभाव वाले पच परमेष्ठियो के साथ ध्यान द्वारा एकता को अनुभव करने वाला मनुष्य भी अपने अन्दर की एव वाहर की स्थिति मे वड़ा भेद अनुभव किए विना रह नही सकता।

जहाँ जहाँ वह स्थिति बदलती नही दिखाई दे वहाँ वहाँ समझना चाहिये कि उन परमेष्ठियों का ध्यान योग्य प्रकार से नही होता। धारणा काल मे ध्येय की प्रतीति न्यून होती है एव अहंवृत्ति की प्रतीति विशेष होती है। ध्यान काल मे ध्येय की प्रतीति प्रवल वनती है एव अहवृत्ति की प्रतीति घट जाती है। चोर आदि के भय वाले नगर मे रहने वाले धनिक अपने धन को प्रयत्नपूर्वक सम्हाल कर रखते है वैसे ही ध्यानाभ्यासी को ध्यान से उत्पन्न होते लोकोत्तर आनन्द का अनुभवकरवाने वाली ध्यानानन्द की विलक्षण प्रतीतियो को प्रयत्नपूर्वक परस्पर गुम्फित करना चाहिए।

चित्त को निर्मल किए विना ध्यान कथन मात्र है। वगुले एव त्रिलाव का ध्यान, ध्यान होते हुए भी दुर्ध्यान गिना जाता है। अत ध्यान करने वाले ध्याता को प्रयत्न पूर्वक अपने चित्त को निर्मल करना चाहिए। कहा है "जिसने अपने शरीर, इद्रियो एव कषायो को जीता नही तथा रागद्वेष को दवाया नही, उसकी चेष्टा फूटी मशक मे पानी भरने की तरह निष्फल होती है।"

जिस मन को वश करने का कार्य वडे पर्वत को समूल उखाडने जैसा, अग्नि को भक्षण करने जैसा, भूखे सिंह के समक्ष जाने जैसा, महासागर को भुजाओ द्वारा तैरने जैसा, पृथ्वी को वाहो मे लेने जैसा, आकाश मे निराधार उडने जैसा, तलवार की धार पर नगे पाव चलने जैसा एव प्रवल वेग से वहते वायु को रोकने जैसा अति दुष्कर है वह कार्य भी परमात्मा स्वरूप को प्राप्त हुए परमेष्ठियो के सतत ध्यान से सिद्ध होता है। मात्र उसमे सतत लीन रहना चाहिए। कहा है कि :-

> उत्साहान्निश्चयाद धैर्यात्, सतोषात् तत्त्वदर्शनात्।
> मुनेर्जनपदत्यागात्, षड्भिर्योग. प्रसिध्यति ॥१॥

अर्थात् मन को वश करने रूप योग का कार्य छ प्रकार से सतत प्रयत्न करने से सिद्ध होता है। वे प्रकार निम्नानुसार है

१ उत्साहात् वीर्योल्लास वढाने से।

२ निश्चयात् "यह मेरा परम कर्त्तव्य है" ऐसा एकाग्र परिणाम रखने से।

३. धैर्यात् कष्ट के समय भी स्थिर रहने से ।

४. संतोषात् = आत्मारामता धारण करने से ।

५. तत्वदर्शनात् योग ही तत्व है, परमार्थ है ऐसा विचार करने से ।

६. जनपदत्यागात् — गतानुगतिक लोक के व्यवहार का परित्याग करने से ।

उत्साहादि इन छ. वस्तुओ द्वारा योग सिद्ध होता है । इस योग का अर्थ है ध्यान अथवा एकाग्रता का परिणाम ।

आकाश मे स्थित तारे, पृथ्वी पर स्थित बालू की कणिकाओ तथा मेघ मे से बरसते बरसात के बिन्दुओ की सख्या गिनना जितना दुष्कर है उससे भी अधिक दुष्कर चचल मन को वश करना है तो भी उत्साहादि छ हेतुओ सहित प्रयत्न किया जाय तो पच परमेष्ठियो के ध्यान द्वारा मन वश हो सकता है एव ध्याता शान्ति, स्थिरता, निश्चलता, निर्भयता आदि गुणो का अनुभव करता है ।

जन्म जरा एवं मरण से अत्यन्त दारुण इस भवारण्य मे मद पुण्यवालो को श्री नमस्कार मत्र की प्राप्ति कभी भी नही होती ।

शुभ ध्यान के प्रकार एवं नमस्कार

महामंत्र ध्यान का आरोहण क्रम

विशुद्ध लेश्यावाला ही ध्यान का अधिकारी है अथवा रागद्वेष पर विजय प्राप्त कर जिसने मन शुद्धि की है, वही ध्यान का अधिकारी है। राग द्वेष पर विजय समताभाव से होती है एव समताभाव की सिद्धि ममता का नाश करने वाली शुभ भावनाओं से होती है। मैत्री, प्रमोद, कारुण्य एव माध्यस्थ्य से पवित्र चित्तवाली तथा शुभ भावनाओं से भावित आत्मा ध्यानारोहण कर सकती है।

ध्यान का स्थान पर्वत की गुफा, जीर्ण उद्यान, शून्य गृह आदि हैं जहाँ कि मनुष्यो का आवागमन नहीं हो, मन को विक्षिप्त करने वाले निमित्तो का अभाव हो, जहाँ प्राणी का उपघात नहीं हो ऐसे उचित शिलातल पर पर्यंक आदि किसी भी योगआसन पर बैठना चाहिए जिससे अपने मन वचन, एव काया के योगो का समाधान रहे एवं प्राणो का मंद मंद संचार हो इस रीति से बैठना चाहिए। प्राणो का अति निरोध करने से चित्त का व्याकुल होना सम्भाव्य है। कहा है कि 'ऊसास न निरुंभइ' अर्थात् श्वासोच्छ्वास को रोकना नही क्योकि ऐसा करने से एकाग्रता मे खलल पहुँचती है। फिर चक्षु आदि इन्द्रियो को अपने विषयो से विमुख कर हृदय, ललाट या मस्तक किसी भी अधिक परिचित स्थान पर मनोवृत्ति को एकाग्र कर, पूर्व अथवा उत्तर दिशा की तरफ प्रसन्न वदन होकर शुभ ध्यान करना चाहिए। वह ध्यान दो प्रकार का है वाह्य एव आन्तर। वाह्य ध्यान सूत्रार्थ का परावर्तन रूप है अथवा दृढ़व्रतता, शीलानुराग तथा वचन, काया एव मन के व्यापारो को दृढ़ता से रोके रखना आदि वाह्य ध्यान हैं। आन्तर ध्यान वह है कि जिसे दूसरा न जान सके, मात्र अनुमान कर सके। यह केवल स्वसंवेदग्राह्य-ध्यान संक्षेप मे चार प्रकार का है। अन्यत्र उसके दश प्रकार भी बताए गए है। आन्तर ध्यान

को आध्यात्मिक धर्मध्यान भी कहते हैं। परमेष्ठि के स्मरण में उन दशों प्रकार के ध्यान का किस प्रकार समावेश होता है उसका संक्षेप मे विचार किया गया है :

अपाय विचय

अपाय के विषय मे विचार को अपाय विचय कहते है। मन, वचन-काया के दुष्ट व्यापार आत्मा के लिए अपाय कारक होते है। उन दुष्ट व्यापारो से आत्मा भव सागर मे भटकती है। श्रेष्ठ राज्य प्राप्ति के पश्चात् जैसे मूढ आत्मा भिक्षा हेतु भटकती है वैसे ही मन, वचन काया के शुद्ध व्यापार वाला जीवन मोक्ष स्वाधीन होते हुए भी दुष्ट व्यापारो के कारण भव भ्रमण करता है। "मेरे दुष्ट व्यापारो को मैं किस प्रकार रोकूँ" इस प्रकार के सकल्प वाले जीव को अपाय विचय धर्म ध्यान होता है क्योंकि उसमे दोष वर्जन की परिणति है। यह परिणति कुशलता की ओर प्रवृत्ति करवाने वाली है। श्री नमस्कार मत्र के बल से योगो का काम क्रोधादिरूप अशुभ अभ्यास टलकर ज्ञानादि शुभ अभ्यास की वृद्धि होती है अत नमस्कार मत्र का आश्रय यह अपाय विचय धर्म-ध्यान का ही एक प्रकार है।

उपाय विचय

कुशल व्यापारो का स्वीकरण ही उपाय-विचय है। 'मोह पिशाच' से आत्मा की रक्षा करवाने वाला कुशल व्यापारो वाला मैं किस प्रकार बनूँ ? इस प्रकार का सकल्प प्रबन्ध उपाय विचय है। श्री नमस्कार मत्र की आराधना से वह पार पड़ता है।

जीव विचय

मात्र अपनी आत्मा का विचार करने मे उपयोगी ध्यान जीव विचय है। जैसे कि "मेरी आत्मा असख्य प्रदेशवाली है, साकार, अनाकार उपयोग युक्त है, अनादि अनन्त है, कृत कर्म के फल को भोगने वाली है, कर्म सम्बन्ध से भव भ्रमणशील है एव कर्म वियोग से मोक्ष को प्राप्त करने वाली है" इस प्रकार का विचार नमस्कार मत्र मे अनुस्यूत है अतः उसका आराधन जीव विचय धर्म ध्यान स्वरूप है।

अजीव विचय

धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल अथवा जो अनुक्रम से गति, स्थिति, अवगाह वर्तनादि एवं ग्रहण गुण वाला है तथा अगुरु लघु आदि अनन्त पर्याय वाला है। जिसमे अजीवों का विचार स्थिर चित्त से हो वह अजीव विचय धर्म-ध्यान है। यह ध्यान देह एवं आत्मा के अभेदपन की भ्रान्ति का निवारण करने वाला है क्योंकि यह भ्रान्ति अनन्त शोक एवं आतक आदि का कारण है। श्री नमस्कार मत्र का ध्यान भी भेद ज्ञान का साधक है अत. उसकी आराधना अजीव-विचय धर्म-ध्यान स्वरूप बनती है।

विपाक विचय

कर्म के विपाक का चिन्तन विपाक विचय है। अरिहंत की पदवी से लगाकर नारकीय जीव की विपत्ति तक जिसका एक छत्र साम्राज्य प्रवर्तित है उस शुभाशुभ कर्म के मधुर-कटुक फलो का विचार करना ही विपाक-विचय है। पुन जो कर्म मूलउत्तर प्रकृति के भेद से अनेक प्रकार का है, पुद्गलात्मक है, नीरक्षीर न्याय से आत्मा के साथ अनादिकाल से सम्बन्धित है, लोहाग्निन्याय से आत्मा के लिये पीड़ा कारक है ऐसा ध्यान विपाक विचय है। इस धर्म ध्यान से कर्म जन्य सासारिक फल की अभिलाषा से आत्मा निवृत्त होती है एवं यह ध्यान भाव-वैराग्य का कारण बनता है। श्री नमस्कार मत्र का ध्यान कर्म विपाक से छुड़वाने वाला है अत. यह ध्यान भी उसी के अन्तर्गत स्थित है।

विराग विचय

यह शरीर अशुचि है, शुक्रशोणित रूपी अशुचि से उत्पन्न हुआ है, मदिरा के घट की भाँति पावन नही हो सकता है, विनश्वर है, जिसमे प्रवेश करने मात्र से ही मिष्टान्न विष्टारूप एव अमृत भी मूत्र रूप बन जाता है। यह अनित्य है, अरक्षणीय है, यम की पीड़ा के समय पिता माता भ्राता, भगिनी, भार्या अथवा पुत्र किसी के द्वारा भी रक्षणीय नही है, जिसमे से निरतर अशुचि प्रवाहित हो रही है

एवं नव छिद्रों से निरंतर अशुचि बाहर निकल रही है। अतः यह निश्चय होता है कि उसमे कुछ भी सुन्दर नही। इस प्रकार का शरीर के स्वभाव का विचार वैराग्य का हेतु होता है। विषय परिणाम से कटु हैं, किंपाक वृक्ष के फलों के उपभोग के समान है, स्वभाव से भंगुर हैं, पराधीन हैं, संतोष रूपी अमृत-रस के आस्वादन का शत्रु है एवं इससे उत्पन्न होने वाला सुख लारों के चाटने से उद्भूत बालक के दूध के स्वाद के सुख की तरह अपार-मार्थिक है। उसमे आस्था रखना अविवेक पूर्ण है उससे विरमित होना ही श्रेयस्कर है, विरति ही कल्याण कारिणी है।

पुनः यह गृहवास भी सुलगती अग्नि की ज्वालाओ के समान है जिनमे विषयो से स्निग्ध इन्द्रिय रूपी ईंधन जल रहा है। उसमे से धून की घटा के समान अज्ञान की परम्परा प्रसरित हो रही है। इस ज्वालामाला को प्रशात करने का सामर्थ्य मात्र एक धर्म रूपी मेघ मे ही है। अत' उसमे ही प्रवृत्ति रखना उचित है। ऐसा धर्म ध्यान राग के कारणो का निरोध करने वाला होने से तथा परमानन्द के आस्वाद तुल्य आनन्द को साक्षात् प्रदान करने वाला होने से अवश्यमेव करणीय है। नमस्कार मत्र की आराधना मे यह विराग-विचय धर्म-ध्यान भरा हुआ है।

भव विचय

स्वकृतकर्म के फल का उपभोग करने के लिए जीव को फिर जन्म लेना पड़ता है, वहाँ अरघट्ट घटीयंत्र के न्याय की तरह मूत्र, विष्टा एव आतो से युक्त दुर्गन्धी पेट के खोखले मे बारबार रहना पड़ता है। वहाँ बसने वाले जन्तु का कोई सहायक नही होता इत्यादि भव परिवर्तन का विचार सत्प्रवृत्ति मे हेतुभूत भवनिर्वेद का कारण होता है। श्री नमस्कार मत्र के ध्यान से यह भवनिर्वेद पोषित होता है, पुष्ट होता है अत' यह भव-विचय धर्म-ध्यान का ही एक प्रकार है।

संस्थान विचय

नीचे कुर्सी जैसा, मध्य मे झालर जैसा, आगे डमरु जैसा, चौदह राज प्रमाण लोक है। यह चिन्तन वारम्बार करने से चित्त का अन्य

विषयों की तरफ होता संचार अटक जाता है एवं एकाग्रता प्राप्त होती है। श्री नमस्कार मत्र के ध्यान मे भी चौदह राज लोक का विचार आ जाता है अत. वह भी सस्थान विचय ध्यान का ही एक प्रकार है।

आज्ञा विचय

परलोक-बध-मोक्ष-धर्म-अधर्मादि अतीन्द्रिय एव सूक्ष्म भावों के विषय मे आप्त वचन को प्रमाण रूप मे धारण करने से सकल संशय विलीन हो जाते है एव सकल प्रवृत्ति को जीवन्त रखने मे प्राण तुल्य श्रद्धा की सतति अविच्छिन्न होती है। अत अत्यन्त दुर्ज्ञेय एवं हेतु-उदाहरणादि से अगम्य, सूक्ष्य एवं अतीन्द्रिय पदार्थ भी असत्य नही, जिन वचन प्रामाण्य से सत्य है ऐसी प्रतीति धारणा करना आज्ञा विचय धर्म ध्यान है। श्री नमस्कार मंत्र जिनाज्ञा का अनुसरण स्वरूप है अत. उसका चिन्तन आज्ञा विचय धर्म ध्यान का ही एक प्रकार है।

हेतु विचय

आगम विषयक वाद विवाद द्वारा जिसकी बुद्धि स्थिर न हो वैसे तर्कानुसार बुद्धि वाले पुरुष की आगम विषयक परीक्षा ही हेतु विचय धर्म-ध्यान है। स्याद्वाद प्ररूपक आगम कसने, काटने एव तपाने से शुद्ध है अत. अवश्य आश्रयणीय है। इस प्रकार की विशिष्ट श्रद्धा की अभिवृद्धि करने वाला होने से हेतु विचय धर्म ध्यान कर्तव्य है। श्री नमस्कार मत्र भी कष, छेद एव ताप की परीक्षा से शुद्ध सिद्ध होने से उसका ध्यान हेतु विचय धर्म ध्यान का एक प्रकार बनता है।

दीर्घ काल पर्यन्त तप तपा, चारित्र पाला एव बहुत शास्त्र पढे पर यदि नमस्कार मत्र के प्रति प्रीति उत्पन्न नही हुई, उसकी शरण प्राप्त नही की तो वह सब निष्फल है।

भाव मंगल श्री नवकार

"मङ्गयते-साध्यते हितमनेनेति मङ्गलम्" अर्थात् जिससे हित साधा जाता है वह मङ्गल होता है। अथवा हित धर्म से ही साधा जाता है अत. हित साधक धर्म को जो लाता है वह मङ्गल है। कहा है कि "मङ्गम्-धर्म लातीति मङ्गलम्" यहाँ मङ्ग का अर्थ है धर्म, उसे लाने वाला मङ्गल होता है ऐसा दूसरा अर्थ भी मङ्गल का है। अथवा धर्म की प्राप्ति अधर्म के नाश से होती है। सर्व अधर्मो का मूल कारण विषय, कषाय एव उसके फलस्वरूप चारो गतियो मे परिभ्रमण स्वरूप ससार है अत. "ससार परिभ्रमण का क्षय करने वाला मङ्गल होता है" ऐसा तीसरा अर्थ भी मङ्गल का होता है। कहा है कि मा भवात्-ससारात् गालयति-अपनयतीति मङ्गलम् अर्थात् मा = मुझे ससार से गालयति-पार उतारे, मेरे ससार को दूर करे वह मङ्गल।

इस प्रकार मगल का अर्थ है हित का साधन, धर्म का उपादान एव अधर्म के मूलभूत ससार के परिभ्रमण का ही मूलोच्छेदन। सुखसाधक एव दु खनाशक पदार्थ को मङ्गल रूप मानने की रूढि ससार मे प्रसिद्ध है। परम्परा से भी दु खोच्छेदक एव सुख प्रापक पदार्थ मङ्गल रूप माने जाते है तथा जिस प्रकार कष्ट निवारण का अथवा सुख (निश्चित नही पर सदिग्ध) प्रदान करने मे समर्थ पदार्थ भी मङ्गल रूप माने जाते है। जैसे दही, दूव, अक्षत, श्रीफल, पूर्णकलश एव स्वास्तिकादिक पदार्थ।

इस प्रकार सुख के निश्चित अथवा सदिग्ध साधनभूत सभी वस्तुए जगत् मे मङ्गल रूप गिनी जाती है। अहिंसा, सयम एव तप रूप धर्म तथा स्वाध्याय, ध्यान एवं ज्ञानादि गुण, दु.ख ध्वस एव सुखसिद्धि के निश्चित साधन है अतः वे भाव-मङ्गल गिने जाते है। दही, दूव, अक्षत, श्रीफल, पूर्णकलश एव स्वस्तिक आदि सदिग्ध साधन है अतः वे सब द्रव्य-मङ्गल गिने जाते है। जैसे द्रव्य-मङ्गल

सुख के संदिग्ध साधन हैं वैसे ही संपूर्ण सुख को प्रदान करने वाले भाव मङ्गल भी सुख के निश्चित साधन है एव उनके सेवन करने वाले को वह संपूर्ण एवं अविनाशी सुख प्रदान करता है अत. द्रव्य मङ्गल से भाव मगल का मूल्य बहुत अधिक है।

जैन शास्त्रो मे अनेक प्रकार के भाव मङ्गल हैं उन सब में श्री पंच परमेष्ठि नमस्कार को प्रधान मङ्गल कहा गया है। उसके मुख्य दो कारण है। एक तो श्री पंच-परमेष्ठि नमस्कार स्वयं गुण स्वरूप है एव दूसरा गुणों का बहुमान स्वरूप है। अहिंसा, संयम एव तप तथा स्वाध्याय, ध्यान एव ज्ञान आदि स्वय गुण स्वरूप है पर गुणो का बहुमान स्वरूप नही। पुन. श्री पच-परमेष्ठि नमस्कार सभी सद्‌गुणो मे शिरोमणिभूत विनय गुण के पालन स्वरूप है। विनय मोक्ष का मूल है, विनय के बिना ज्ञान नही, ज्ञान के बिना दर्शन, दर्शन के बिना चारित्र एव चारित्र के बिना मोक्ष नही। दूसरी प्रकार से मोक्ष के लिए चारित्र की आवश्यकता है एव चारित्र के लिए श्रद्धा की आवश्यकता है। श्रद्धा के लिए ज्ञान की एव ज्ञान के लिए विनय की आवश्यकता है और यह नमस्कार विनय स्वरूप है।

योग्य के प्रति विनय सद् विनय है। श्री पंच परमेष्ठि नमस्कार मे तात्त्विक गुणो को धारण करने वाले (विनय योग्य त्रिकाल एवं त्रिलोक वर्ती) सभी व्यक्तियो को नमस्कार किया जाता है।

पच परमेष्ठि नमस्कार मे नमस्कार करने योग्य व्यक्तियो की सर्वोत्कृष्टता होने के कारण उन्हे किया गया नमस्कार सभी विनयो मे प्रधान विनय स्वरूप बन जाता है। प्रधान विनय गुण के पालन से प्रधान (यथार्थ) ज्ञान, प्रधान (तात्त्विक) दर्शन (श्रद्धा), प्रधान (श्रेष्ठ) चारित्र एव प्रधान (अव्याबाध) सुख की प्राप्ति होती है। परमेष्ठियो को नमस्कार स्वरूप प्रधान विनय गुण के पालन किए बिना ज्ञान, ध्यान अथवा सयम सर्व प्रधान मोक्ष सुख को प्रदान करने मे सफल नही हो सकते।

श्री पच परमेष्ठि नमस्कार जिस प्रकार मुख्य तथा विनय गुण के पालन स्वरूप है वैसे ही गुणो के बहुमान स्वरूप भी है। गुण

वहुमान चित्त की अचिन्त्य शक्तियुक्त धर्म है। गुण बहुमान के आशय से युक्त चित्त थोड़े ही समय मे सभी प्रकार की अशुद्धियो एवं अहंकारादि दोषो से रहित वन जाता है।

कच्ची मिट्टी के घड़े मे भरा हुआ पानी जिस प्रकार प्रति क्षण घड़े का नाश करने वाला सिद्ध होता है वैसे ही चित्त रूपी घडे मे भरा हुआ गुण वहुमान रूपी जल चित्त के दोषो एव मलीनता को प्रति क्षण नष्ट करता है। गुण वहुमान को धारण करने वाला मानसिक भाव जिस प्रकार अचिन्त्य प्रभाव सम्पन्न होता है वैसे ही गुण वहुमान को व्यक्त करने वाली वाचिक एव कायिक चेष्टाएँ भी प्रभाव सम्पन्न वन जाती हैं। श्री पच परमेष्ठि नमस्कार मे ये तीनो वस्तुएँ निहित हैं। मन से नमने का भाव, वचन से नमने का शब्द एव काया से नमने की क्रिया होनी चाहिए। इस प्रकार ज्ञान, शब्द एव क्रिया रूप त्रिविध क्रिया युक्त श्री पच परमेष्ठि नमस्कार पाप ध्वस एव कर्म क्षय का अनन्य कारण रूप वन जाता है। अत वह सर्वोत्कृष्ट भाव-मङ्गल स्वरूप है एव इसी के कारण ही श्री पच परमेष्ठि नमस्कार मत्र की चूलिका मे कहा गया है कि

एष पञ्च नमस्कार सर्व पाप-प्रणाशन ।
मङ्गलानां च सर्वेषाम्, मुख्य भवति मगलम् ॥१॥

अर्थ.—पाँचो परमेष्ठियो को किया गया नमस्कार सभी पापों को मूल से नाश करने वाला है तथा सर्व मगलो मे प्रथम-प्रधान-सर्वोत्कृष्ट मगल स्वरूप है ॥१॥

श्री नमस्कार मत्र के प्रभाव से चोर रक्षक वनते हैं, ग्रह अनुग्रह करते हैं एव अपशुकुन शुभशुकुन रूप वन जाते है।

नमस्कार मंत्र का आव्हान-घोषणा

"तावं न जायइ चित्तेण, चितियं पत्थियं च वायाए ।
काएण समाढत्तं, जाव न सरियो नमुक्कारो ॥१॥"

अर्थात् जब तक श्री पंच परमेष्ठि नमस्कार महामंत्र का स्मरण नहीं करे तब तक ही चित्त से चिन्तित, वचन से इच्छित एवं काया से प्रारम्भ किया हुआ कार्य सम्भव नहीं होता ।

धर्मास्तिकायादि द्रव्यों की भांति नमस्कार मंत्र शाश्वत है, श्री तीर्थंकरों के धर्मोपदेश की तरह इसके उपकार अनन्त हैं । इस संसार में ऐसा कोई भी पाप नहीं है कि जिसका प्रतिकार नमस्कार महामंत्र के आश्रय से असम्भव हो । इस मंत्र के अक्षर केवल अक्षर ही नहीं हैं किन्तु साक्षात् ज्योतिपुंज अक्षरमय देवता है । इसका शरणागत इसका विधिपूर्वक श्रवण अथवा स्मरण करने वाला अभय है ।

नमस्कार मंत्र की यह प्रतिज्ञा है कि मैं किसी भी आश्रय लेने वाले के पापों का समूल नाश करूँ । इस प्रतिज्ञा को गलत सिद्ध करने वाला आज तक कोई मिला ही नहीं । इसे गलत साबित करने वाला स्वयं ही झूठा पड़ता है ।

नमस्कार मंत्र की दूसरी प्रतिज्ञा यह है कि मेरे शरणागत की शरण सब को लेनी पड़ती है । संसार में जितने शुभ एवं श्रेष्ठ, सजीव अथवा निर्जीव पदार्थ हैं वे सभी नमस्कार के दास हैं । नमस्कार मंत्र की यह दूसरी प्रतिज्ञा टंकसाली है । इसकी सत्यता की कसौटी करने हेतु नमस्कार मंत्र को सारे विश्व को आमंत्रण है । विश्व के समक्ष नमस्कार मंत्र का यह आव्हान है, खुले आम घोषणा है कि उठो ! जागो एवं श्री नमस्कार मंत्र के इस आह्वान को हर्ष पूर्वक स्वीकार करो । उसका स्वीकरण करने हेतु श्री नमस्कार मंत्र का सभी को प्रेम भरा आमंत्रण है ।



स्वाध्याय एवं नवकार

मदिरा, विषय, कषाय, निद्रा एव विकथा—ये पाँच प्रकार के प्रमाद जिस प्रकार आत्मा का अध.पतन कर संसार सागर मे रुलाते है वैसे ही वाचना पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा एवं धर्म कथा—ये पाँच प्रकार के स्वाध्याय आत्मा को ससार सागर से पार उतार मुक्ति के अव्याबाध सुख मे सराबोर कर देते हैं। यह है स्वाध्याय का विशद स्वरूप। सबसे सरल प्रकृति का अल्पज्ञ भी इसका स्वाध्याय कर सकता है एवं अवसर पर यह मत्र द्वादशागी का भी स्थान ले सकता है।

जैनागम मे स्वाध्याय को मोक्ष का परम अग कहा गया है। प्रत्युपेक्षणा, प्रमार्जना, भिक्षाचर्या, वैयावृत्य आदि संयम के असंख्य व्यापारो मे से किसी भी योग मे लीन जीव प्रति समय असंख्य भवो के कर्मो का क्षय करता है। तो भी स्वाध्याय योग मे लीन व्यक्ति स्थिति एव रस के द्वारा कर्मो का विशेष रूप से क्षय करता है।

कर्म क्षय के मुख्य हेतु दो हैं। मन, वचन एव काया के अशुभ व्यापारो का निग्रह एव तीनो योगो का शुभ व्यापारो मे प्रवर्तन। ये दोनो हेतु स्वाध्याय योग मे रत होते हुए जिस प्रकार सिद्ध होते हैं उस प्रकार अन्य व्यापारो की अवस्था मे सिद्ध नही हो सकते हैं। यह बात केवल आगम से ही नही परन्तु युक्ति एव अनुभव से भी सिद्ध होती है।

जैन शास्त्र मे स्वाध्याय पाँच प्रकार का कहा गया है। वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा एव धर्मकथा। वाचना-गुरु से सूत्र-अर्थ ग्रहण करना। सदेह निवारण के लिए पूछने को पृच्छना। असदिग्ध सूत्रार्थ को पुनः पुन. रटना परिवर्तना। परिवर्तना को परावर्तना भी कहते है। तत्त्व का पुन. पुनः चिन्तन अनुप्रेक्षा एव अनुग्रह बुद्धि से योग्य पुरुषो के समक्ष उपदेश अथवा चर्चा करना धर्म कथा है। यह

पाँचों प्रकार का स्वाध्याय मन-वचन-काया के अशुभ व्यापारों का निरोध करवा कर शुभ कार्य में एकाग्रता पूर्वक प्रवर्तन करवाता है। अतः यह कर्मक्षय का असाधारण हेतु बन परम्परा से परमपद की प्राप्ति करवाता है। शास्त्र कहते है कि आदरपूर्वक स्वाध्याय की लीनता यावत् सर्वज्ञ पद एवं तीर्थंकर पद की प्राप्ति का कारण बनती है। पाँचों प्रकार का स्वाध्याय पदार्थों के परमार्थ को प्रदर्शित करने वाला एवं क्षण क्षण में सद्गति का मूलरूप परम् वैराग्य का कारण बनता है।

चौदह पूर्वधर इस स्वाध्याय को उत्कृष्ट रूप से करते हैं। महाप्राण ध्यानादि सामर्थ्य से अन्तर्मुहूर्तकाल में वे चौदह पूर्वों का एवं बारह अंगों का परावर्तन करते हैं। दश पूर्वधरों को दशपूर्वों का स्वाध्याय होता है, नौ पूर्वधरो को नौ पूर्वों का एव इस प्रकार घटते घटते जिसे दूसरा कुछ भी नहीं आता है उसे भी पच परमेष्ठि नमस्कार का स्वाध्याय होता है क्योंकि यह पंच परमेष्ठि नमस्कार द्वादशांग का अर्थ है अतः वह अति महान् है। श्री पच परमेष्ठि नमस्कार द्वादशांग का अर्थ होने के तीन कारण है:

१. द्वादशांग के स्थान पर उसका उपयोग होता है।
२. परिणाम की विशुद्धि का कारण है।
३. इससे ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना होती है।

शास्त्रों मे कहा गया है कि घर मे आग लगने पर लोग जिस प्रकार अन्न वस्त्रादि अन्य वस्तुओ को छोड़ कर एकाध बहुमूल्य कीमती रत्न को ग्रहण करते हैं अथवा रण संग्राम के समय सुभट अन्य उपाय न देखकर तलवार भाला आदि शस्त्रो को छोड़कर एक अमोघ बाण अथवा शक्ति आदि शस्त्र को ग्रहण करता है वैसे ही मृत्युवेला मे पूर्वधर भी जब अन्य श्रुत (शास्त्र) को याद रखने मे असमर्थ हो जाते हैं तब द्वादशांग को छोड़ कर श्री अरिहंत आदि के नमस्कार को ही याद करते है। इससे यह सिद्ध होता है कि नमस्कार महामंत्र द्वादशांग का अर्थ है अथवा समग्र द्वादशांग का अध्ययन-वाचन परिणाम की विशुद्धि के लिए ही होता है। परम पुरुष परमेष्ठियों

को नमस्कार करने से भी इसी अर्थ की सिद्धि होती है अतः यह मंत्र द्वादशांग का अर्थ है। अथवा ज्ञान-दर्शन-चारित्र ही द्वादशांग का अर्थ है। वे गुण श्री अरिहंतादि पाँच परमेष्ठियो मे निहित हैं पर दूसरों मे नही। श्री पच परमेष्ठि नमस्कार द्वारा इन तीनों की ही साधना होती है अत. इससे भी यह मत्र द्वादशाग का अर्थ है। अथवा सम्पूर्ण द्वादशांगी देव, गुरु एव धर्म स्वरूप है एवं नमस्कार भी देव, गुरु एव धर्म स्वरूप है।

इस प्रकार द्वादशांग के साध्य अर्थ का साधक होने से, मृत्यु वेला में भी सुख पूर्वक स्मरणीय होने से एक अपेक्षा से इस नमस्कार महामन्त्र का माहात्म्य द्वादशाग से भी बढ जाता है। शास्त्रकारो ने नामादि मगलो मे इस नमस्कार मन्त्र को प्रथम मगल कहा है एव व्याधि, तस्कर, अग्नि आदि के सर्व भयो को दूर करने वाला बताया है। कहा है कि:

"हरइ दुक्खं कुणइ सुह, जणइ जस सोसए भवसमुद्दम्।
इहलोय पारलोइय-सुहाण मूलं नमोक्कारो ॥१॥"

अर्थात् यह नमस्कार मंत्र दुखो का हरण करता है, सुख का सर्जन करता है, यश का जनन करता है, भव समुद्र का शोषण करता है तथा यह लोक परलोक के सुखो का मूल है।

श्री नमस्कार महामन्त्र सर्व श्रेयो मे परम श्रेय, सर्व मगलो मे परम मगल, सर्व पूज्यो मे परम पूज्य एव सर्व फलो मे श्रेष्ठ परम फल स्वरूप है।

नमस्कार महामन्त्र का उपकार

"मग्गो अविप्पणासो, आयारो विणयया सहायत्तं ।
पचविहनमोक्कारं, करेमि एएहिं हेऊहिं ॥१॥"
[आवश्यक निर्युक्ति गाथा २६४४]

अर्थ मार्ग, अविप्रणाश, आचार, विनय एव सहाय इन पाँच हेतुओ द्वारा मैं पाँच प्रकार का नमस्कार करता हूँ ।

निर्युक्तिकार श्रुतकेवली भगवान् श्री भद्रबाहुस्वामीजी आवश्यक निर्युक्ति की उपर्युक्त गाथा मे श्री पच परमेष्ठि भगवन्तो को पाँचो कारणो द्वारा नमस्कार करने का विधान करते है । इन पाँचो कारणो मे प्रथम परमेष्ठि को नमस्कार का कारण 'मार्ग' है । इस विषय में टीकाकार महर्षि कहते कि पाँच परमेष्ठियो मे प्रथम परमेष्ठि श्री अरिहन्त सर्वप्रथम नमस्कार के योग्य हैं, उसका कारण 'मोक्षमार्ग' है । अर्थात् सम्यक् दर्शन आदि मोक्ष मार्ग उन्ही का बताया हुआ है । इस मार्ग पर चलने से भव्य जीवो को मुक्ति मिलती है । इस प्रकार भव्य जीवो की मुक्ति की साधना मे साक्षात् हेतु मोक्ष मार्ग ही है एवं इस मार्ग को सर्वप्रथम दर्शाने वाले श्री अरिहन्त भगवान् हैं अतः श्री अरिहन्त भगवान् भी परम्परा से मोक्ष के कारण होने से पूज्य है ।

जिस प्रकार श्री अरिहन्त भगवान् परम्परा से मोक्ष मार्ग मे उपकारी है वैसे ही वस्त्र, आहार, शय्या, आसन आदि भी साधक के लिये मोक्ष मार्ग के साधन हैं अत वे भी पूजा के पात्र क्यो नही ? इन्हे प्रदान करने वाले गृहस्थ भी उपकारी अथवा पूज्य क्यो नही ? इस प्रश्न का उत्तर देना चाहिए । भाष्यकार भगवन्त श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण एव टीकाकार महर्षि मल्लधारी श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए—श्री विशेषावश्यक भाष्य मे मूल गाथा २६४८ तथा उसकी टीका मे कहा है.

"जं पच्चासन्नतरं कारणमेगंतियं च नाणाइं।
मग्गो तद्दायारो सयं च मग्गोत्ति ते पुज्जा ॥१॥"

अर्थ यह ठीक नहीं है कि परम्परा से ज्ञानादि रत्न त्रय रूप मोक्ष मार्ग मे उपयोगी केवल वस्त्रादि अथवा उन्हे प्रदान करने वाले गृहस्थादि ही उपकारी है वरन् दूसरे प्रकार से तीनो जगत् ही उपकारी है। परन्तु वे सब दूर-दूर के कारण हैं। इतना ही नही पर वे अनेकान्तिक अर्थात् ऐसे कारण हैं जो कभी बन भी सकते है कभी नही भी बन सकते हैं। परन्तु अरिहन्त भगवान् मार्ग को देने वाले भी है एव स्वयं मार्ग स्वरूप भी है अतः पूज्य है।

सबसे समीप का एव अवश्य फल प्रदान करने वाला कारण तो रत्नत्रय ही है एव उसके प्रदाता श्री अरिहन्त है। अत वह मार्ग एव उसके प्रदाता अरिहन्त भगवन्त वास्तव मे उपकारी एव पूज्य है। वस्त्रादि साधन एव गृहस्थादि तो भगवन्तो से प्राप्त ज्ञानादि रत्नत्रय के लिये सम्भावित उपकार करने वाले है अत. पूज्यत्व की पक्ति मे नही आते हैं। इतना ही नही परन्तु इससे पूज्य वस्तुओ की इयत्ता (मर्यादा) नही रहने से अनवस्था दोष भी प्राप्त होता है। इसके उपरान्त भी विशेष कारण तो यह है कि श्री अरिहन्त भगवान् केवल मार्ग बताने वाले ही नही स्वय मार्गरूप भी हैं, अरिहन्तो के दर्शन मात्र से भी भव्य जन्तुओ को मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार श्री अरिहन्त उपदेश से मोक्ष मार्ग को देने वाले हैं वैसे ही उपदेश के अतिरिक्त भी उनके दर्शन, पूजन, स्तवन एव ध्यानादि भी मोक्ष एव मोक्षमार्ग की प्राप्ति करवाने वाले होते है। यही अरिहन्त भगवन्तो की विशेषता है। कहा है कि. -

नामाकृतिद्रव्यभावै. पुनतस्त्रिजगज्जनम् ।
क्षेत्रे काले च सर्वस्मिन्नर्हत. समुपास्महे ॥१॥

अर्थ नाम, आकृति, द्रव्य एव भाव द्वारा तीनो जगत् को पवित्र करने वाले सर्व क्षेत्र के एव सर्व काल के श्री अरिहन्तों की हम उपासना करते है।

अरिहन्त भगवान् उपदेश द्वारा ही मोक्ष के एवं मोक्ष मार्ग के दातार हैं ऐसा एकान्त नियम जैन शासन मे नही है। उपदेश द्वारा, आज्ञा पालन द्वारा जिस प्रकार अरिहन्त भगवान् मोक्ष एवं उसके मार्ग की प्राप्ति के हेतुभूत है वैसे ही उनके नाम-स्मरणादि अथवा आकृति के दर्शनादि भी क्लिष्ट कर्म का क्षय करवाकर मोक्ष की एवं उसके मार्ग की प्राप्ति के कारण बन जाते हैं। अरिहन्त भगवान् का नाम एवं रूप जिस प्रकार कर्म का क्षयोपशम करवाने वाले एवं मार्ग प्रदान करने वाले है वैसे ही द्रव्य एवं भाव भी अन्तरायादि कर्मों को हटाने वाले एव ज्ञानादि गुणो को प्रकट करने वाले होते हैं। यहाँ द्रव्य का अर्थ है उनकी पूर्वोत्तर अवस्थाएं, उनका श्रवण, मनन एव चिन्तन। भाव अर्थात् समवसरण मे स्थित धर्मोपदेश के समय चतुर्मुख अवस्था का ध्यान, नमन एवं पूजन आदि को समझना चाहिये। अरिहन्त भगवन्तो की ऐसी एक भी अवस्था नही है कि जिसका ध्यान, चिन्तन अथवा मनन आदि भव्य जीवो को मोक्ष की, मोक्षमार्ग की अथवा बोधि बीज की प्राप्ति का हेतु नही बने। इस प्रकार मार्ग प्राप्ति का असाधारण कारण होने से एवं स्वय भी मार्ग स्वरूप होने से अरिहन्त भगवन्त उपकारी हैं, पूज्य है एव इस कारण से मोक्षार्थी जीवो के लिये नमस्करणीय हैं। कहा है कि—

"તાહરુ ધ્યાન તે સમકિત રૂપ,
તેહીજ જ્ઞાન ને ચારિત્ર તેહ છે જી;
તેહથી જાએ સઘલા હો પાપ,
ધ્યાતા રે ધ્યેય સ્વરૂપ હોવે પછેજી"
(પૂ૦ ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજી મહારાજ)

अर्थात्—आपका ध्यान ही समकित रूप है, वही ज्ञान एवं चारित्र है, इसी से समस्त पाप प्रणष्ट हो जाते हैं एव फिर ध्याता ध्येय स्वरूप हो जाता है।

*

नमस्कार महामंत्र का उपकार

[२]

अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एव साधु इन पाच परमेष्ठियों को किया जाने वाला नमस्कार मगल का कारण बनता है। पर कब? इसका ध्यान नही हो तो रोज अनेक वार नमस्कार करते हुए अथवा गिनते हुए भी अध्यवसायो की विशुद्धि नही हो एव वह भाव मगल का कारण नही हो-ऐसा भी हो सकता है। शास्त्रो मे कहा है कि :

"प्रणिधानकृत कर्म, मत तीव्रविपाकवत्"

अर्थात् प्रणिधान का अर्थ है चित्त की एकाग्रता एव उसके द्वारा किया हुआ कर्म तीव्रविपाक अर्थात् उत्कृष्ट फल को प्रदान करने वाला होता है। इससे विपरीत एकाग्रता अथवा तन्मयता से रहित किया जाने वाला कर्म मद विपाक वाला अथवा शून्य फल वाला होता है। इससे ज्ञात होगा कि कर्म का जितना महत्व है उतना ही बल्कि उससे भी अधिक महत्व उसके पीछे स्थित एकाग्रता का है। पर यह एकाग्रता लानी किस प्रकार ?

केवल इच्छामात्र से कार्य सिद्धि नही होती अथवा एकाग्रता आवश्यक है इतना समझने मात्र से भी एकाग्रता नही आती। एकाग्रता लाने हेतु रुचि चाहिये एव रुचि उसी काम मे हो सकती है कि जिससे अपना स्वार्थ सिद्ध होता हो। श्री अरिहत को नमस्कार करने के द्वारा अपना कोई स्वार्थ सिद्ध होता दिखे तो ही उसमे रुचि उत्पन्न हो सकती है, यह स्वार्थ क्या है? श्री भद्रबाहुस्वामीजी ने ऊपर नमस्कार निर्युक्ति की एक गाथा द्वारा इसे स्पष्ट किया है इसमे कहा है कि श्री अरिहत भगवान् को नमस्कार करने से मैं 'मार्ग' को चाहता हूँ। सिद्ध भगवान् को नमस्कार कर मैं 'अविप्रणाश' को चाहता हूँ। आचार्य भगवान् को नमस्कार कर मैं 'आचार' को चाहता हूँ। उपाध्याय भगवान् को

नमस्कार कर मैं 'विनय' को चाहता हूँ एवं साधु भगवान् को नमस्कार कर मै 'सहाय' को चाहना करता हूँ।

मार्ग, अविप्रणाश, आचार, विनय एव सहाय ये पाँचों वस्तुएं मुख्य रूप से परमेष्ठियो को नमस्कार करने से ही हमको प्राप्त हो सकती हैं। दूसरे किसी भी उपाय से वे प्राप्त नही हो सकती है अत मैं इन पाचो को नमस्कार करता हूँ। यह पूज्य आचार्य श्री भद्रबाहु-स्वामीजी का दृढ सकल्प है अत. वे कहते है :

'पचविहनमोकार, करेमि एएहिं हेऊहिं।'

अर्थात् इन पाच हेतुओ से मैं पाच प्रकार का नमस्कार करता हूँ। 'मार्ग' हेतु का विचार ऊपर किया जा चुका है अब दूसरे 'अविप्रणाश' हेतु का विचार किया जा रहा है – सिद्ध भगवन्तो को नमस्कार करते समय एकाग्रता लाने मे मुख्य हेतु सिद्ध भगवन्तो की 'अविनाशिता' का ही ध्यान है। इस अविनाशिता का विचार यह बताता है कि अरिहत पदवी का अन्त है, आचार्य, उपाध्याय एव साधु अवस्थाओं का भी अन्त है, मात्र एक सिद्ध अवस्था ही ऐसी अवस्था है कि जिस पर काल का वश नही। देव-देवेन्द्र, चक्रवर्ती अथवा अहमिन्द्र के पदो के एवं सुखो के अन्त है किन्तु सिद्ध भगवान् के सुख का अन्त नही। सादि अनन्तकाल तक अव्याबाध रूप से यदि किसी भी सुख का उपभोग हो सके तो वह एक सिद्ध पद का ही सुख है।

पू० उपाध्याय भगवान् श्री यशोविजयजी महाराज आठवी योग दृष्टि के वर्णन मे कहते हैं :

सर्वशत्रुक्षय, सर्वव्याधिलय,
पूरण सर्व समीहाजी;
सर्व अर्थ योगे सुख तेहथी,
अनन्त गुण निरीहा जी ॥१॥

अर्थात् सभी शत्रुओ का क्षय होने से, सभी व्याधियों का विलय होने से, सभी इच्छाओ की पूर्ति होने से एवं सभी पदार्थों के संयोग से संसारी जीवों को जो सुख होता है उससे अनन्त गुना सुख

एक सिद्ध भगवान् को होता है एवं उसका कभी अन्त नही होता। सुख की यह स्थिति सिद्ध भगवान् के अतिरिक्त दूसरे किसी को प्राप्त नही होती अत वैसे अविनाशी सुख-के चाहक आत्माओं के लिए सिद्ध भगवान् को नमस्कार परम उपादेय होता है। अविनाशीपन के प्रणिधान से सिद्ध भगवान् को किया जाने वाला नमस्कार तन्मयता को ला देता है एवं यह तन्मयता नमस्कार को भाव नमस्कार मे परिणत कर देती है। यह भाव नमस्कार ही परमार्थ मंगल है।

परमार्थ मगल वस्तुत॰ आत्मा के शुभ अध्यवसाय को छोडकर अन्य कोई नहीं। अविनाशी गुण के प्रणिधान द्वारा सिद्ध भगवन्तो को किया गया नमस्कार शुभ अध्यवसाय को जगाने वाला होता है अत. वह भाव मगल है। भाव मगल का अर्थ है निश्चय से मगल। मगल का कार्य, अनिष्ट का निवारण एव इष्ट का लाभ दिलवाने का है। वह जिससे हो अथवा न हो तो वह द्रव्य मगल एव जिससे अवश्य हो वह भाव मंगल है।

सम्यग्दृष्टि के लिए सारा ससार अनिष्ट है मात्र मुक्ति का सुख ही इष्ट है। उसकी अवश्य सिद्धि सिद्ध भगवान् के नमस्कार से तब होती है कि जब वह प्रणिधान पूर्वक किया जाय। इस प्रणिधान को लाने हेतु नमस्कार की अथवा दूसरी किसी भी क्रिया के पीछे प्रशस्त हेतु की आवश्यकता है। तभी प्रणिधान आ सकता है। अत॰ श्रुत केवली भगवन्त श्री भद्रबाहुस्वामीजी उन हेतुओ को ही यहाँ नमस्कार के पीछे प्रधान हेतु रूप मे स्थान देते हैं।

अरिहत नमस्कार के पीछे 'मार्ग' हेतु प्रधान है तो सिद्ध नमस्कार के पीछे 'अविनाश' हेतु प्रधान है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि दूसरे गौण हेतु अनेक हो सकते है। ज्यो ज्यो उन हेतुओ का प्रणिधान बढता जाता है त्यो त्यो नमस्कार की भावरूपता, परमार्थमगलमयता बढती जाती है। गौण हेतुओ मे अरिहत भगवान् का 'शब्द' एव सिद्ध भगवान् का 'रूप' कहा जा सकता है, अरिहत भगवान् का 'औदार्य' एव सिद्ध भगवान् का दाक्षिण्य कहा जा सकता है, अरिहत भगवान् का उपशम' एव सिद्ध भगवान् का 'सवेग' कहा जा सकता है। इसी प्रकार अरिहंत भगवान् की 'मैत्री' एव सिद्ध भगवान् का

'माध्यस्थ्य', अरिहंत भगवान् की 'अहिंसा' एवं सिद्ध भगवान् का 'सत्य' आदि भी गौण हेतुओ मे माना जा सकता है। इस प्रकार अनन्त अनन्त गुणो मे से एक एक गुण को अलग अलग रूप से लेकर उसका प्रणिधान पूर्वक अरिहत, सिद्ध आदि परम पच परमेष्ठियों को नमस्कार करने का अभ्यास साधित किया जाय तो एकाग्रता बढ जाती है। शास्त्रोक्त तच्चित्त, तन्मन, तल्लेश्या, तदध्यवसाय, तत्तीव्राव्यवसान आदि विशेपणो से चित्त विभूषित हो जाय। इससे कच्ची मिट्टी के घड़े मे भरे हुए जल के समान अशुभ कर्मो का समूल क्षय होकर सर्व शुभ मगलो की प्राप्ति सुलभ बन जाती है।

यह है पचपरमेष्ठि भगवान् के भाव नमस्कार की प्राप्ति का सरलतम उपाय। सभी भव्य आत्माए उसका आदर कर अपना सर्वोत्तम कल्याण साधे यही कामना है।



नमस्कार महामन्त्र का उपकार

[३]

हम यह देख चुके हैं कि प्रणिधान पूर्वक किया गया कर्म उत्कृष्ट फल को प्रदान करने वाला होता है। उस प्रणिधान का अर्थ है चित्त को एकाग्रता। एकाग्रता का दूसरा पर्याय तन्मयता है। तन्मयता अथवा एकाग्रता लाने का उपाय क्रिया मे रुचि उत्पन्न करता है एव रुचि उसी क्रिया मे उत्पन्न हो सकती है कि जिस क्रिया के करने से कर्त्ता को उत्तम लाभ की सम्भावना हो।

परमेष्ठि नमस्कार से जीव को क्या लाभ होता है अथवा किस वस्तु के लाभ के लिये परमेष्ठि नमस्कार किया जाय? इस सम्बन्ध मे जितना ही स्पष्ट ज्ञान होगा नमस्कार की क्रिया मे उतना ही अधिक रस पैदा हो सकेगा। श्रुत केवली भगवान् श्री भद्रबाहु स्वामी के शब्दो मे हम देख चुके है कि प्रथम परमेष्ठि श्री अरिहन्त परमात्मा को नमस्कार करने से जीव को 'मार्ग' की प्राप्ति होती है, अथवा 'मार्ग' हेतु की प्राप्ति के लिए श्री अरिहन्त परमात्मा को नमस्कार करना चाहिए। इस मार्ग को भावमार्ग अर्थात् रत्नत्रय रूप मोक्षमार्ग जानना चाहिये। कहा है कि -

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥

अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र यह रत्नत्रय ही मोक्षमार्ग है। श्री अरिहन्त नमस्कार द्वारा रत्नत्रय रूप मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है। अरिहन्त नमस्कार ही निश्चय रूप से रत्नत्रय स्वरूप मोक्ष मार्ग है। अरिहन्तों को नमस्कार करते समय होती अरिहन्त पद की 'धारणा' सम्यग्दर्शन गुण की शुद्धि करती है। अरिहन्त पद का 'ध्यान' सम्यग्ज्ञान गुण की शुद्धि करता है एव अरिहन्त

पद की 'तन्मयता' सम्यक् चारित्र गुण की शुद्धि करती है। दर्शन गुण सम्यक् तत्त्व-रुचि रूप है, ज्ञान गुण सम्यक् तत्त्ववोध रूप है एवं चारित्र गुण सम्यक् तत्त्व परिणति रूप है।

अरिहन्त के नमस्कार द्वारा अरिहन्त पद की धारणा अनुवन्धित की जाती है। उस समय अरिहन्त पद का 'ध्यान' होता है एव अरिहन्त पद की ही 'तन्मयता' साधी जाती है। पुनः पुनः नमस्कार द्वारा ज्यो-ज्यो अरिहन्त पद की धारणा वढती जाती है त्यो-त्यो जीव का सम्यक् तत्त्व परिणति रूप चारित्र गुण प्रकट होता जाता है। अरिहन्त को नमस्कार करते समय ही अरिहन्त पद सम्वन्धी धारणा, ध्यान तथा तन्मयता साधी जाती है एवं उसके परिणाम स्वरूप होती जीव की शुद्धि तथा पुण्यवृद्धि द्वारा उत्तरोत्तर रत्नत्रय रूप मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती जाती है। यह सब होने का कारण शुद्ध प्रणिधान है।

प्रणिधान कहो अथवा एकाग्रता कहो उसके होने के पीछे कारण है 'मार्ग' का लक्ष्य। साध्य के लक्ष्य पूर्वक होती क्रिया केवल क्रिया ही नही किन्तु रुचि युक्त क्रिया है। क्रिया में रुचि समाहित करने से वह क्रिया केवल कायवासित अथवा वाग्वासित नही रह कर मनोवासित भी वन जाती है। इस प्रकार मन, वचन एव काया तीनो से वासित नमस्कार की क्रिया को ही शास्त्रो मे 'नमस्कार पदार्थ' कहा गया है। श्री नमस्कार निर्युक्ति मे श्रीमद् भद्रवाहुस्वामीजी ने कहा है कि

मणसा गुण-परिणामो, वाया गुण-भासणं च पचण्हं।
काएण संपणामो, एस पयत्थो नमुक्कारो ॥१॥

अर्थ मन से आत्मा का पच परमेष्ठि के गुणो मे परिणमन, वचन से उनके गुणो का कीर्तन एव काया से सम्यग् विधि युक्त उन्हे प्रणाम ही नमस्कार पदार्थ है अर्थात् नमस्कार पद का यही वास्तविक अर्थ है। सच्चा नमस्कार करने के लिए काया से प्रणाम एवं वाणी से गुणो के उच्चारण के साथ मन का परमेष्ठि के गुणो मे परिणमन भी आवश्यक है। यह परिणमन परमेष्ठि नमस्कार के पीछे स्थित हेतुओं का शुद्ध चिन्तन करने से होता है।

अरिहन्त भगवान् के नमस्कार के पीछे जिस प्रकार 'मार्ग' हेतु है वैसे ही सिद्ध भगवान् के नमस्कार के पीछे 'अविनाश' हेतु है। संसार की सभी वस्तुएं विनाशी है, एक सिद्ध पद ही अविनाशी है। 'अविनाशी' पद की सिद्धि हेतु सिद्ध भगवान् को किया जाता हुआ नमस्कार सहेतुक नमस्कार है। इसी से वह भाव नमस्कार बन जाता है। किसी भी क्रिया को भाव क्रिया बनाने हेतु शास्त्रो ने चित्त को आठ प्रकार के विशेषणो से विशिष्ट बनाने हेतु आदेश दिया है। उन विशेषणो से यह समझा जा सकता है कि अपनी क्रिया भाव क्रिया है अथवा नही ? साथ ही यदि यह भावक्रिया नही हो तो उसे भाव क्रिया बनाने का ज्ञान मिलता है। श्री अनुयोगद्वार सूत्र मे भाव-क्रिया का लक्षण बताते हुए कहा है कि

जण्णं समणे वा, समणी वा, सावए वा, साविया वा, तच्चिते, तम्मणे, तल्लेसे, तदज्झवसिए, तत्तिव्वज्झवसाणे, तदट्ठोवउत्ते, तदप्पिअकरणे, तब्भावणाभाविए, अन्नत्थ कत्थइमण अकरेमाणे उभओकाल आवस्सय करेइ।

अर्थ साधु, साध्वी, श्रावक एव श्राविका उभयकाल आवश्यक को करते है। किस प्रकार ? तच्चित, तन्मन, तल्लेश्या, तदध्यवसाय, तत् तीव्रअध्यवसान, तद्अर्थोपयुक्त, तदर्पितकरण एव तद् भावना से भावित होकर मन को अन्य गामी न बनाकर एकनिष्ठ होकर करे तो यह भाव क्रिया है एव इस प्रकार होता आवश्यक भाव आवश्यक है।

यहाँ सामान्य उपयोग को तच्चित्त कहा है, विशेष उपयोग को तन्मन कहते है। उपयोग की विशुद्धि को तल्लेश्या कहते है। जब भावानुसार ही स्वर भावित हो तब लेश्याविशुद्धि हुई गिनी जाती है। जब स्वरानुसारी ध्यान होता है तभी चित्त तदध्यवसित एव वैसा ही तीव्र अध्यवसानमय हुआ गिना जाता है। तदर्पित करण, तदर्थोपयुक्त एव तद्भावना भावित ये चित्त के तीन विशेषण बढती हुई एकाग्रता का सूचन करते है। सभी करण अर्थात् मन, वचन एव काया, तथा करण, करावण एव अनुमोदन द्वारा युक्त चित्त, अर्थ, भावार्थ एवं

रहस्यार्थ मे उपयोग युक्त चित्त एवं इन तीनों की भावना मे भावित जब अन्त करण हो जाए तो आवश्यकादि क्रिया भाव क्रिया कहलाती हैं। नमस्कार की क्रिया को भी यदि भाव क्रिया बनानी हो तो चित्त अथवा अन्त करण को उपर्युक्त विशेषणो से विशिष्ट बनाना चाहिए। अन्त करण भी विशेषणो से विशिष्ट तभी बनता है कि जब नमस्कार की क्रिया सहेतुक बने अर्थात् क्रिया के पीछे हेतुओ का स्पष्ट ज्ञान एवं लक्ष्य हो।

श्री अरिहन्त के एव श्री सिद्ध के नमस्कार के हेतुओं का ज्ञान होने के बाद श्री आचार्य नमस्कार मे निहित हेतु का ज्ञान आवश्यक है, वह हेतु आचार प्रधान है। आचार्य का आचार पाँच प्रकार का अथवा छत्तीस प्रकार का अथवा एक सौ आठ प्रकार का है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप एवं वीर्य आत्मा के पाँच मुख्य गुण हैं। उन्हे प्रकट करने हेतु पाँचो आचार अनुक्रम से ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार एवं वीर्याचार के नाम से जाने जाते है। उनमे से ज्ञानाचार के आठ, दर्शनचार के आठ, चारित्राचार के आठ एव तपाचार के बारह प्रकार है। ये ही आचार के छत्तीस प्रकार हैं। इन्ही छत्तीस प्रकार के आचारो को तीन प्रकार के वीर्याचार से गुणित करने पर एक सौ आठ प्रकार के आचार होते हैं। इनका विस्तृत विवेचन श्री आवश्यक सूत्र एव उसकी टीका आदि मे किया गया है। इन सभी आचारो के ज्ञान मे एवं पालन मे जो कुशल है वे तीसरे पद पर प्रतिष्ठित भाव आचार्य हैं। उपाध्याय भगवान् एव साधु भगवान् भी इन सभी आचारो से पूर्ण होते हैं परन्तु वे आचार्य भगवान् की आज्ञा से प्रेरित होने से गौण हैं। पचाचार के पालक एवं प्रवर्तक मुख्यतया आचार्य भगवन्तो के 'आचार' गुण का प्रणिधान, आचार्य नमस्कार के पीछे होना चाहिये।

पाँचों विषयो से रहित पाँच परमेष्ठियों मे स्थित सर्वश्रेष्ठ पाँच विषयो को अलग कर उन उन विषयो के प्रणिधान पूर्वक पच परमेष्ठियो को नमस्कार किया जाय तो भी वह नमस्कार भाव नमस्कार बन सकता है। पाँच विषयो मे मुख्य विषय शब्द है एवं शब्दो मे सर्वश्रेष्ठ शब्द एक श्री अरिहन्त परमात्माओ का है। समवसरण मे

विराजमान श्री अरिहन्त भगवन्त जब धर्मदेशना देते हैं तब उनकी शब्द ध्वनि आषाढ के मेघो की गर्जना से भी अधिक मधुर एवं गम्भीर होती है। अथवा ऐसा मालूम होता है कि कही समुद्र मथन की ही ध्वनि न हो जैसे प्रभु के श्री मुख से निकलती शब्द की ध्वनि श्रोताओ के चित्त के सन्ताप को हरने वाली होती है, विषय रूप विष के आकर्षण को टालने वाली होती है। श्री अरिहन्त के शब्द की तरह सिद्धो का रूप एवं उनका प्रणिधान तीनो लोको मे स्थित सभी प्रकार के रूप की सुन्दरता का मिथ्या आकर्षण हटाने वाला होता है।

यहाँ शंका होती है कि फिर सिद्ध का क्या रूप होगा ? अशरीरी सिद्ध भगवन्तो के शरीर ही नही तो फिर रूप तो होगा भी कहाँ से पर यहाँ रूप शब्द का अर्थ शरीर का रूप नही लेकर आत्मा का रूप लेना चाहिये। पुन शरीर का रूप अथवा सौन्दर्य अन्तत आत्मा के रूप का ही आभारी है। जीवरहित शरीर का रूप, रूप नही माना जाता। जब तक शरीर मे जीव होता है तब तक ही शरीर का रूप सौन्दर्य आकर्षित करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि ससारी जीवो के शरीर का सौन्दर्य भी वस्तुत' शरीर मे स्थित चेतन की चेतना के सौन्दर्य के साथ सम्बन्धित हैं। सिद्ध भगवान् अशरीरी है अत: उनका रूप एवं सौन्दर्य सभी ससारी जीवो के शरीर के रूप एवं सौन्दर्य से विलक्षण हैं। यह रूप शरीर का नही है तो भी देह मे जो रूप है वह चेतना की उपस्थिति के कारण है। वह रूप चेतन का है अत. वह सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वाधिक है।

सिद्ध का रूप सभी रूपो मे श्रेष्ठ है अत' उनका ध्यान अन्य सभी रूपशील पदार्थों के रूप के अयोग्य आकर्षण को पलमात्र मे बिखेर देता है। जैसे ही आचार्य भगवान् के आचार की गन्ध, शील की सुगन्ध सार्वलौकिक सुगन्धित पदार्थो की सुगन्ध के अयोग्य आकर्षण को टाल देती है। जीव मे शब्द आदि विषयो की वासना अनादि काल से है। उस वासना को नष्ट करने के लिए एक तरफ तो विषयो की विरसता का चिन्तन एवं दूसरी तरफ सुन्दरता परिणामी विषयो की सुन्दरता का प्रणिधान अति आवश्यक है। गन्ध की वासना

को निर्मूल करने हेतु आचार्यों के भावाचारों की सुवास का तथा पंचाचार के पालन से उत्पन्न होती शील रूप सुगन्ध का प्रणिधान, उत्तम प्रणिधान का काम करता है।

श्री अरिहन्तों की गम्भीर ध्वनि श्री सिद्धों का अविनाशी रूप एवं श्री आचार्यों के सदाचार की सुवास हम देख चुके हैं अब यह देखेंगे कि श्री उपाध्यायों के स्वाध्याय का रस तथा श्री साधुओं की निर्मल काया का स्पर्श तथा दोनों का प्रणिधान नमस्कार की क्रिया को किस प्रकार भाव क्रिया में परिवर्तित कर देता है।



नमस्कार महामंत्र का उपकार

(४)

श्रुत केवली भगवान् श्री भद्रबाहुस्वामीजी कहते हैं कि 'मार्ग' अविप्रणाश, आचार, विनय एव सहाय इन पाच हेतुओ के लिए मैं श्री पच परमेष्ठि भगवान् को नमस्कार करता हूँ। सहेतुक क्रिया ही फलवती होती है। हेतु अथवा सकल्प विहीन कर्म फलीभूत नही होता। श्रुत केवली भगवान् श्री भद्रबाहुस्वामी ने नमस्कार निर्युक्ति मे नमस्कार के पीछे निहित पाच प्रकारों के हेतु बताए हैं। ये पांच हेतु तो मात्र उपलक्षण है, 'मार्ग' हेतु के लिए ही श्री अरिहंत को नमना आवश्यक है ऐसा नही है पर जिस प्रकार अरिहत मार्गोपदेशक है अत नमस्कार के पात्र है वैसे ही वे औदार्यादि अनन्त गुणो से अलकृत हैं अतएव नमस्करणीय हैं। पाच हेतुओ को बताकर ही पाच की सख्या का विधान नही किया गया है पर क्रिया को फलवती बनाने हेतु उन्हे हेतु पूर्वक करना चाहिए। यह नियम बताया गया है। उस हेतु रूप मे श्री अरिहतो की मार्गोपदेशकता उनका अनुपम औदार्य, अनुपम उपशम, अनुपम मैत्रीभाव, अनुपम अहिंसा आदि किसी भी एक गुण को लिया जा सकता है। अरिहतो मे स्थित किसी भी विशेषता को लक्ष्य कर जब श्री अरिहत भगवान् को नमस्कार किया जाय तो नमस्कार प्रणिधान युक्त बनता है, चित्त की एकाग्रता लाने वाला बनता है। कभी भी चित्त की एकाग्रता बलपूर्वक नही साधी जा सकती एव यदि साधी भी जाय तो दीर्घकाल तक टिकती नही। चित्त का स्वभाव ही ऐसा ही है कि उसे जिसमे आनन्द आता है उसमे वह तुरन्त ही स्थिर हो जाता है। श्री अरिहत के नमस्कार मे चित्त को स्थिर करना ही तो अरिहत मे स्थित कोई भी मुख्यता, जिसमे स्वय की रुचि हो, उसे लक्ष्य करना चाहिए, उसके समक्ष लक्ष्य केन्द्रित करना चाहिए। इसके साथ ही चित्त की लीनता आ जाती है, लीनता आने के साथ ही मंगल का आगमन एव विघ्नो का विदारण हो जाता है।

श्री नमस्कार मंत्र मंगलमय है, सर्व मंगलों मे प्रधान मंगल है, सभी पापों का आत्यन्तिक क्षय करने वाला है आदि विशेषण तभी चरितार्थ होंगे कि जब उनके स्मरण, जप अथवा ध्यान से चित्त लयलीन बनेगा। इस लीनता को लाने का एक साधन श्री अरिहतादि परमेष्ठियों मे स्थित विशेषताओ का प्रणिधान है।

श्री अरिहंत परमात्मा मे मोक्ष मार्ग की आद्यप्रकाशकता के साथ विशुद्ध सम्यक् दर्शन है एवं यह सम्यक् दर्शन पाने की जितनी सामग्री चाहिए उतनी सब एक साथ उनमे एकत्र स्थित है। श्री आठ महाप्रतिहार्यों की पूजा, समवसरण की समृद्धि, अतिशय वाली धर्म कथा, देवो की पूजा, पुण्य के प्रत्यक्ष फल आदि अगणित वस्तुएं उनको देखने वाले, सुनने वाले अथवा परिचय में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपूर्व श्रद्धावान एव धर्म के प्रति परम आदरवान बनाने का अचिन्त्य सामर्थ्य रखती है।

श्री अरिहतो का ज्ञान, श्री अरिहतो का वैराग्य, श्री अरिहतो का धर्म, श्री अरिहतो का ऐश्वर्य आदि एकैक वस्तु ऐसी है कि वे उसका प्रणिधान करने वाली आत्मा के अन्त करण मे सम्यक्त्व का सूर्य उदित करती हैं, मिथ्यात्व का घोर अन्धकार हमेशा के लिए निवारित कर देती हैं। नमस्कार को भाव नमस्कार बनाने हेतु नमस्कार की क्रिया मे चित्त के भाव को जगाने हेतु यह सरलतम युक्ति है।

श्री षोडशक आदि ग्रंथों मे धर्मसिद्धि के पांच लक्षण कहे गए हैं। उनमे से पहला लक्षण औदार्य अर्थात् कार्पण्य का त्याग दूसरा धैर्य अर्थात् धैर्य एव गाम्भीर्य युक्त दाक्षिण्य एव तीसरा लक्षण तीनो काल के पाप की जुगुप्सा है, चौथा लक्षण निर्मल बोध है एव पाचवाँ लक्षण जन प्रियत्व है। श्री अरिहतो का अनुपम औदार्य उनकी धर्मसिद्धि को सूचित करता है पुन क्षायिक भाव से अरिहतो मे सम्यक्त्व गुण प्रकट हुआ है। सम्यक्त्व का प्रथम लक्षण उपशम अर्थात् अपराधी के प्रति क्रोध का अभाव है। पुन. श्री अरिहतो मे मैत्री, प्रमोद, कारुण्य एव माध्यस्थ्य रूप सम्यक्त्व की चार भावनाएं पराकाष्ठा को पहुची हुई हैं। पुन. श्री अरिहतो द्वारा प्रकाशित लोकालोक के स्वरूप का

ज्ञान अद्वितीय है, विश्व में अजोड़ है। श्री अरिहंतों की अहिंसा सर्वलोक व्यापी है, समस्त जीव राशि को आवृत करने वाली है आदि गुणो के प्रणिधान पूर्वक हो तो अरिहत नमस्कार गुण बहुमान भावयुक्त होता है एव गुण बहुमान का भाव अचिन्त्य शक्तियुक्त है ऐसा शास्त्र कहते है। कहा है कि

भत्तीइ जिणवरिंदाणं खिज्जंति पुव्वसंचिया कम्मा।
गुण-पगरिस-बहुमाणो, कम्मवणदवाणलो जेण ॥१॥

अर्थ जिनवरेन्द्रो को भक्ति से पूर्व सचित कर्मों का क्षय होता है क्योकि गुण प्रकर्ष का बहुमान कर्म रूपी वन को जलाने हेतु दावानल का काम करता है।

श्री अरिहतों की तरह श्री सिद्ध भगवान् के 'अविनाशिता' आदि गुणो के प्रणिधान पूर्वक होने वाला नमस्कार गुण बहुमान के भाव वाला बनता है। अत वह भी अचिन्त्य शक्तियुक्त है एव कर्मवन को दग्ध करने हेतु दावानल तुल्य बन जाता है। इस प्रकार श्री आचार्य को नमस्कार भी जब आचार्य मे स्थित भावाचार, सारल्य, पाप जुगुप्सा, भवनिर्वेद, कारुण्य, औचित्य आदि के प्रणिधान पूर्वक होता है तो वह गुण बहुमान को उत्पन्न करने वाला बनता है एव वह असख्य भवो मे उपार्जित कर्मो को भस्म कर देता है। ऊपर हम देख चुके हैं कि श्री अरिहतो के सर्वश्रेष्ठ शब्द-धर्मोपदेश श्री सिद्धो के स्वरूपो का कारण एव ससार के सभी रूपो से चढता अविनाशी रूप श्री आचार्यों का आचार एव उसके पालन से प्रकट होती भावसुवास, उन सबके प्रणिधान पूर्वक होता नमस्कार भाव नमस्कार बनता है। अब हम यह देखेंगे कि श्री उपाध्याय भगवान् को किया गया नमस्कार किस प्रकार भाव नमस्कार बन सकता है। शब्द, रूप एव गध जिस प्रकार क्रमश श्रोत्र, चक्षु एव घ्राण के विषय है वैसे ही रस एवं स्पर्श अनुक्रम से रसनेन्द्रिय एव स्पर्शेन्द्रिय के विषय है एव जीव को उनका आकर्षण अनादि काल से है। उसे टालने के उपाय रूप मे एव उसके द्वारा उपाध्याय के नमस्कार को भाव नमस्कार बनाने हेतु श्री उपाध्याय भगवान् के स्वाध्याय एव उससे उत्पन्न होते एक प्रकार के रस का प्रणिधान आवश्यक है। द्वादशागी रूप प्रवचन का स्वाध्याय

निरन्तर करना एवं दूसरों को करवाना ही श्री उपाध्याय भगवान् का सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य है। वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा एवं धर्म कथा रूप पाच प्रकार के स्वाध्याय रूपी भाव रथ पर आरूढ चौथे श्री उपाध्याय परमेष्ठि निर्विघ्न रूप से मुक्ति नगरी की ओर प्रयाण कर रहे है। इस स्वाध्याय का रस अतीन्द्रिय तृप्ति को प्रदान करता है कि जो तृप्ति षड्रस भोजन का निरन्तर स्वाद करने वाले को भी दुर्लभ है। रसना के विषय रस एव उसकी तृप्ति को चाहने वाले षड्रस भोजी पुरुष की तृप्ति तो वस्तुतः अतृप्ति को बढाने वाली है परन्तु श्री श्रुतज्ञान के अभ्यास से होती श्री उपाध्याय भगवान् की तृप्ति अनादि विषयो की अतृप्ति को शमित करने वाली एव अतीन्द्रिय तृप्ति के निरुपम आनन्द को प्रदान करने वाली है। शाश्वत मोक्ष सुख के आस्वाद के नमूने के रूप मे अतीन्द्रिय तृप्ति का प्रणिधान रसनेन्द्रिय के विषयरूप रस की अनादि तृष्णा को शान्त कर अन्ततः मोक्ष के अतीन्द्रिय अव्याबाध सुख को प्रदान करने वाला होता है। इस प्रकार होता भाव नमस्कार सभी के पुण्य कार्यों के समूह मे स्वामी तुल्य बनता है। इस भाव नमस्कार के बिना अनन्तत वार ग्रहण किए हुए श्रमणलिंग भी द्रव्यलिंग बन गए है एव उनकी साधना अकृतकृत्य रही है।

कहा है कि:

यथा नक्षत्रमालाया स्वामी पीयूषदीधिति ।
तथा भावनमस्कार. सर्वस्या पुण्यसहतौ ॥१॥
जीवेनाकृतकृत्यानि, विना भावनमस्कृति ।
गृहीतानि विमुक्तानि, द्रव्यलिंगान्यनन्तश ॥२॥

अर्थ—नक्षत्रमाला मे जिस प्रकार चन्द्रमा सभी का स्वामी है वैसे ही सभी प्रकार के पुण्य समूह मे भाव नमस्कार मुख्य है। भाव नमस्कार विना जीव ने अनन्त वार द्रव्यलिंग ग्रहण किए एवं छोड़े पर कार्य सिद्धि नही हुई।

कार्य की सिद्धि के लिए नमस्कार आवश्यक है एवं वह गुण बहुमान के भाव से आता है अत. श्री अरिहतादि परमेष्ठियो के एक एक विशिष्ट गुण को प्रधान बनाकर उसके प्रणिधान पूर्वक नमस्कार का अभ्यास डालना आवश्यक है।

श्री उपाध्याय भगवान् के स्वाध्याय के रस की तरह ही श्री साधु भगवान् के सयम एव तप से पवित्रीभूत शरीर के स्पर्श गुण का अचिन्त्य प्रभाव एव उसके प्रणिधान के स्वरूप का अब चिन्तन करना है।

नमस्कार महामन्त्र का उपकार

(५)

श्री पच परमेष्ठियो को किया जाने वाला नमस्कार पापी से पापी एव अधम से अधम जीव को भी पवित्र एव उच्च बना देता है। श्री अरिहन्त पद मे, श्री सिद्ध पद मे, श्री आचार्य पद मे, श्री उपाध्याय पद मे एव श्री साधु पद मे स्थित निर्मल आत्माएँ जगत पर जो उपकार करती है वैसे उपकार को दूसरे किसी भी स्थान पर स्थित आत्माएँ नही कर सकती है। देवेन्द्र अथवा चक्रवर्ती, वासुदेव, प्रति-वासुदेव अथवा बलदेव, राजा महाराजा अथवा राष्ट्रपति, विश्व की भौतिक समृद्धि के इन सभी अधिपतियो के उपकार, आध्यात्मिक समृद्धि के स्वामी एव ईश्वर रूप श्री पच परमेष्ठियो के उपकार के समक्ष नगण्य हैं, तुच्छ हैं, एव तृण तुल्य हैं इससे ही इन परमेष्ठियों को किया जाने वाला भाव नमस्कार सभी पापो का समूल नाश करने मे समर्थ है।

श्री अरिहन्तादि परमेष्ठियो का आध्यात्मिक उपकार ज्यों ज्यो समझ मे आता है त्यो त्यो उनके प्रति विशेष बहुमान उत्पन्न होता जाता है। श्री अरिहन्तों का यह उपकार मार्ग-देशकता का है, श्री सिद्धों का उपकार अविनाशिता का है, श्री आचार्यो का उपकार आचार सम्पन्नता का है, श्री उपाध्यायो का उपकार विनय सम्पन्नता का है एव श्री साधु भगवान् का उपकार मुक्तिमार्ग मे सहायदायकता का है। प्रथम चार परमेष्ठियो के उपकारो का यत्किचित् वर्णन हम कर चुके है। अब हम पाँचवे पद मे यह देखेंगे कि साधु भगवान् का विशेष उपकार क्या है और नमस्कर्ता पर वह किस प्रकार होता है?

शरीर मे पांच इन्द्रियाँ है एवं लोक मे परमेष्ठि भगवान भी पाँच हैं। प्रत्येक इन्द्रिय का एक एक विषय है एव उस विषय के

सम्बन्ध मे जीव को अनादि सिद्ध अनुराग है पर पच परमेष्ठि भगवान् के प्रति भक्तिराग को प्रयत्न पूर्वक साधना पड़ता है। विषय सम्बन्धी राग एव परमेष्ठि भगवान् के प्रतिराग एक ही समय में एक ही चित्त मे सम्भव नही हो सकते है। एक जड़ है तो दूसरा चेतन है। जड़ के एव चेतन के धर्म अलग अलग हैं। शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श जड़ के धर्म हैं, तो ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य चेतन के धर्म है अत. जिसे जड़ के धर्म रुचिकर लगें उसे चेतन के धर्म कैसे अच्छे लगे, एव चेतन के धर्म जिसे अच्छे लगे उसे जड़ के धर्म कैसे अच्छे लगे ? अन्य शास्त्रो मे भी कहा गया है "जहाँ राम तँह काम नही जहाँ काम तँह राम नही।" अन्धकार एव प्रकाश दोनो एक ही स्थान पर साथ साथ नही रह सकते हैं। इस प्रकार एक ही चित्त मे विषयो का राग एव परमेष्ठियो की भक्ति एक ही काल मे टिक नही सकती। परमेष्ठियो के प्रति भक्तिराग उत्पन्न करना हो तो विषयो के प्रति वैराग्य साधना सीखना चाहिए। उस वैराग्य को साधने का उपाय विषयो की विपाक विरसता एव विनश्वरता का बारम्बार चिन्तन करना है परन्तु यह कार्य सोचने के समान ही करने मे सरल नही है। बारम्बार के सुखानुभव से विषयो के प्रति साधी हुई दृढ़ राग-वासना इतनी गहरी होती है कि वह चिन्तन मात्र से नष्ट नही होती। प्रत्युत अनेक बार के अभ्यास से साधी हुई वैराग्य भावना एक ही बार के विषय ससर्ग से भी चली जाती हुई अनुभव की जाती है। वैराग्य का यह मार्ग प्रवाह के प्रतिकूल तैरने जैसा है। उस मार्ग मे सिद्धि का अनुभव करने वाला पुरुष विरला होता है। अनेक जन्म के घने अभ्यास के परिणाम स्वरूप किसी बिरले जीव को ज्ञान एव विचार के इस मार्ग मे वैराग्य की सिद्धि प्राप्त होती है।

एक अन्य मार्ग भी सरल है एव उसका अनुसरण सामान्य मनुष्य भी कर सकते हैं। अधिकाश जीवो ने इस मार्ग पर चल कर आसानी से सिद्धि प्राप्त की है। यह मार्ग विषयो के प्रति वैराग्य साधने का नही परन्तु विषयो से सम्बन्धित राग का स्थानान्तरीकरण करने का है। इस मार्ग मे अनादि सिद्ध राग वासना का सामना करने के बदले उसे अनुकूल बनाकर स्वार्थ साधा जाता है। सादी भाषा मे यह लड्डू देकर आभूषण निकालने जैसा सरल मार्ग है।

इन्द्रियों के विषयों के प्रति जीव को जो सहज अनुराग है वह अधिकांशतया कुत्सित, वीभत्स एव अप्रशस्त कोटि का होता है। किन्नरियो के मधुर शब्द जीव को अच्छे लगते है, कामिनियो के मनोहर रूप अच्छे लगते है, सुवासित पदार्थों को सुगन्ध अच्छी लगती है, स्वादिष्ट वस्तुओ के मधुर रस अच्छे लगते हैं एवं सुकुमार पदार्थों के कोमल स्पर्श अच्छे लगते है परन्तु ये सब क्षण परिणामी होते है। उनसे मिलने वाला सुख केले के तने की तरह असार होता है। उससे जीव को तृप्ति नही होती वरन् उसकी अतृप्ति बढती है। उससे मिलने वाले सुखो का अनुभव राग वासना को घटाने के बदले अधिक दृढ़ करता है। इन्ही शब्द, रूप, गन्ध, रस एव स्पर्शो के विषयो के स्थानो को अप्रशस्त के बदले प्रशस्त स्थान पर माना जावे तो उससे राग-वासना शिथिल होती है, चचलता मिटती है एवं जीव को शान्ति प्राप्त होती है। वासनाओ को बढाने वाले राग को प्रशस्त स्थानों पर साधित किया जाय तो वह ज्ञान, दर्शन, चारित्र को बढाने वाला होता है। राग के साधन को भी वैराग्य का साधन बनाने की यह एक अपूर्व युक्ति है। इस युक्ति का आश्रय लेकर ही शास्त्रकार भगवन्तो ने तीव्र राग वासना वाले गृहस्थो के लिए द्रव्यस्तव का विधान किया है। विविध प्रकार के द्रव्यो पर स्थित रागद्वेष की वासना को इस क्रम से नष्ट किया जा सकता है। परमेष्ठि नमस्कार को भी भाव नमस्कार बनाने हेतु भक्ति मार्ग की यह एक सुन्दर योजना है।

श्री अरिहन्त भगवन्तो की धर्मदेशना एवं उनके मुख कमल से निकलती आषाढ़ी मेघ के समान गम्भीर तथा धीर ध्वनि इस प्रकार का एक शब्द करती है कि जिस शब्द के श्रवण करने से, मनन एव चिन्तन करने से, स्मरण एवं ध्यान करने से, राग के बदले ज्ञान, अविवेक के बदले विवेक तथा मूर्छा के बदले त्याग बढ़ता है। यही न्याय श्री सिद्ध भगवन्तो के रूप के, श्री आचार्य भगवन्तो के शील सुगन्ध के श्री उपाध्याय भगवन्तों के स्वाध्याय रस के तथा श्री साधु भगवन्तो के मात्र स्पर्श के साथ भी लागू होता है। राग के साधन-भूत वे सभी विषय वैराग्य के हेतुभूत बन जाते है।

'श्री सिद्ध भगवन्तो के बाह्य रूप नहीं है तो भी आन्तर रूप है। श्री आचार्य भगवन्तो मे बाह्य पदार्थों की सुगन्ध नही तो भी शील

एवं सदाचार के पालन से प्रकट आन्तर सुगन्ध अवश्य है। श्री उपाध्याय भगवन्तो मे बाह्य रस नही तो भी द्वादशाग प्रवचन के नित्य स्वाध्याय से उत्पन्न होते निर्मल ज्ञान का एव पवित्र वचनो का रस अवश्य है। श्री साधु भगवन्तो के पास कामिनियो जैसा कोमल अग स्पर्श नही तो भी उग्र तप एवं कठोर संयम के पालन से उत्पन्न निर्मल एव पवित्र स्पर्श अवश्य है फिर भले ही वह उनकी पवित्र काया का हो अथवा वह काया से स्पर्शित पवित्र वायु एव वातावरण का हो। इस प्रकार पाँचो परमेष्ठियो के ध्यान मे, चिन्तन मे अथवा स्मरण मे मन को पांचो इन्द्रियो के विषय मिल जाते हैं। इससे वह सहज चपलता का त्याग कर स्थिरत्व को प्राप्त करता है।

यहाँ साधु भगवन्तो के स्पर्श के पवित्र होने के निम्न कारण हैं

(१) साधुपना स्वीकार करने के पहले दिन से ही पाँच समिति एव तीन गुप्ति से युक्त पाचो महाव्रतो का वे सतत पालन करते है।

(२) पॉच प्रकार के स्वाध्याय सहित पाँचो परमेष्ठियो का वे सतत ध्यान करते है।

(३) पाचो ज्ञान के आराधन द्वारा पंचम गति को प्राप्त करने हेतु सतत उद्यमी रहते हैं।

इन कारणो से साधु भगवन्तो की काया, उनकी इन्द्रियाँ एव मन, उनके विचार, उनके आसपास का वातावरण हमेशा विशुद्ध रहता है। इस वातावरण को स्पर्श करने वाला अथवा उनका मात्र ध्यान करने वाला, चिन्तन एव स्मरण करने वाला आत्मा स्पर्शेन्द्रिय के अयोग्य अनुराग से मुक्त होता है, इतना ही नही पर देवागनाओ के स्पर्श को भी उनके समक्ष तुच्छ समझता है, तालपुट विष तुल्य समझता है। स्पर्शेन्द्रिय का जो विषय दु ख एव दुर्गति का हेतु है उसे ही यदि दूसरे स्थान पर नियोजित किया जाय तो सुख एव सद्गति का हेतु बन जाता है। वस्तुत सुख एव सद्गति का हेतु साधन शुभ ध्यान है। साधु का स्पर्श, अथवा साधु का स्पर्श किये हुए वातावरण को छूना, अथवा इस पवित्र स्पर्श का मात्र मानसिक विचार भी जीव के शुभ ध्यान को उत्तेजित करता है। इस शुभ ध्यान के बल पर जीव

सद्गति का अधिकारी होता है। अप्रशस्त विषय जिस प्रकार अशुभ ध्यान को जगाते है वैसे ही प्रशस्त विषय शुभ ध्यान को जगाने का सामर्थ्य रखते है। कहा है कि

सल्ल कामा विस कामा, कामा आसीविसोवमा।
कामे य पत्थेमाणा, अकामा जन्ति दुग्गइ ॥१॥

अर्थ विषय शल्य है, विष है एव आशी विष की उपमा से मण्डित है। उन विषयो की इच्छा करने मात्र से इन विषयो से रहित भी दुर्गति मे जाते हैं।

अप्रशस्त विषय चिन्तन मात्र से अशुभ ध्यान को उत्तेजित कर दुर्गति देने की शक्ति रखते हैं तो इनसे विपरीत प्रशस्त विषयो का चिन्तन शुभ ध्यान को जगाता है एवं उसके द्वारा सद्गति दिलाता है तो इसमे क्या आश्चर्य है? अनुभव भी इसी प्रकार कहता है कि दुर्गतिदायक स्पर्शेन्द्रिय का विषय इस प्रकार अपना स्थान परिवर्तित होजाने पर सद्गति का कारण बनता है। इसीलिए साधु भगवन्तो का स्पर्श एव उनका प्रणिधान जिसके गर्भ मे है ऐसा परमेष्ठि नमस्कार द्रव्य नमस्कार को भाव नमस्कार बना देता है।

यहाँ एक बात विचारणीय है कि अप्रशस्त विषयो के ध्यान मे जैसी तीव्रता आती है वैसी तीव्रता प्रशस्त विषयो के ध्यान मे अनुभव नही की जाती अत. अप्रशस्त विषयो का ध्यान दुर्गतिदायक बनता है, यह बात मान्य है पर प्रशस्त विषयो मे जहाँ तक वैसी तीव्रता नही आवे वहां तक वह सद्गति दायक किस प्रकार बने? यह बात बिल्कुल स च्ची है। इसी कारण कहा गया है

ध्यायतो विषयान् पुंस', सङ्गस्तेषूपजायते।
संगात् संजायते काम, कामात् क्रोधोऽभिजायते ॥१॥
क्रोधाद् भवति समोह, समोहात् स्मृति विभ्रम।
स्मृतिभ्रंशाद बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥२॥

अर्थ विषयो के ध्याता पुरुष को जिस प्रकार आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्ति से कामना जगती है, कामना से क्रोध उत्पन्न होता

है। क्रोध से मोह, मोह से स्मृतिभ्रंश, स्मृतिभ्रंश से बुद्धिनाश एवं बुद्धिनाश से सारे विनाश सम्भव होते है।

अप्रशस्त विषयों के ध्यान की परम्परा से जो अनर्थ सर्जित होते हैं वे सर्वलोक प्रसिद्ध हैं किन्तु प्रशस्त विषयों के ध्यान से उत्पन्न होती अर्थ परम्परा का प्रत्यक्ष अनुभव बहुत कम लोगों को होता है। इसके मूल मे अनेक कारण है उसमे मुख्य कारण अभ्यास का अभाव है। प्रत्येक वस्तु अभ्यास से ही सिद्ध होती है। प्रशस्त विषयो के ध्यान का अभ्यास कोई बिरल आत्मा ही करती है एव जो कोई करती है उसे उसका फल अवश्य मिलता है।

द्रव्य-आवश्यक को भाव-आवश्यक बनाने हेतु शास्त्रों मे जो क्रम कहा गया है उसके अनुसार अभ्यास किया जाय तो द्रव्य नमस्कार को भी भाव नमस्कार बनाया जा सकता है। श्रीअनुयोगद्वारसूत्र मे यह क्रम कहा गया है

"से समणे वा० समणी वा तच्चित्ते, तम्मणे, तल्लेसे, तदज्झवसिए, तत्तिव्वज्झवसाणे, तदट्ठोवउत्ते, तदप्पिअकरणे, तब्भावणाभाविए, अन्नत्थ कत्थइ मण अकरेमाणे, उभओकाल आवस्सय करेंति"

अर्थ साधु, साध्वी, श्रावक अथवा श्राविका, उभयकाल आवश्यक को करते हैं तो किस प्रकार.

'तच्चित्त' से यहाँ 'चित्त' शब्द सामान्य उपयोग के अर्थ मे हैं अंग्रेजी मे इसे Attention (अटेंशन) कहा जा सकता है। 'तन्मन' से यहाँ 'मन' शब्द विशेष उपयोग के अर्थ मे है अंग्रेजी मे उसे Interest (इन्टरेस्ट) कहा जा सकता है। "तल्लेश्या" से यहाँ 'लेश्या' शब्द उपयोग विशुद्धि के अर्थ मे है। अंग्रेजो मे इसे Desire (डिजायर) कहा जा सकता है। तदध्यवसाय से यहाँ विशुद्धि का चिन्ह भावितस्वर है। अर्थात् जैसा भाव वैसा ही भावितस्वर है। यह उपयोग की विशुद्धि का सूचक है। जैसा स्वर वैसा ही ध्यान जब होने लगता है तब उसे तदध्यवसाय कहा जाता है। अंग्रेजी मे इसे Will (विल) कहा जा सकता है। वही ध्यान जब तीव्र बनता

है तब उसे "तत्तिव्वज्झवसीणे" कहा जाता है, अंग्रेजी शब्द Power of Imagination (पॉवर आफ इमेजीनेशन) इसका समकक्ष कहा जा सकता है। "तदट्ठोवउत्ते" अर्थात् उसी के अर्थ मे प्रयुक्त। इसे अंग्रेजी मे Visualisation (विसुअलाइजेशन) कहा जा सकता है। तत्पश्चात् "तदप्पियकरणे" अर्थात् जिसने सभी करण उसी के विषय मे अर्पित कर दिए हैं। अंग्रेजी मे उसे Identification (आइडेन्टीफिकेशन) कहा जा सकता है। अन्त मे "तब्भावणाभाविए" अर्थात् उसी की ही भावना से भावित होना जिसे अंग्रेजी में Complete Absorption (कम्पलीट अब्जोर्पशन) कहा जा सकता है।

"तच्चित्त" से लगाकर 'तद्भावनाभावित" तक की सभी अवस्थाए अप्रशस्त विषयों के चिन्तन के समय जीव को अनायास ही सिद्ध हो जाती हैं क्योकि उसका अभ्यास जीव को अनन्त काल से है। प्रशस्त विषयों के ध्यान मे वैसा नही होता क्योकि उनका चिरकालीन अभ्यास नही है वह तो प्रयत्न से ही साध्य होता है। इसलिए श्री अनुयोग-द्वार-सूत्र मे कहा है कि "अन्नत्थ कत्थइ मण अकरे माणे", अर्थात् अन्यत्र किसी भी स्थान पर मन को विना नियोजित किए आवश्यक करे तो वह आवश्यक, भाव-आवश्यक वनता है। जो वात आवश्यक के विषय मे लागू पड़ती है वही वात नमस्कारादि किसी भी सदनुष्ठान के लिए भी लागू पड़ती है।

पंच परमेष्ठि मे स्थित प्रशस्त विषयो के ध्यान से जिस प्रकार एकाग्रता लाई जा सकती है वैसे ही उनमे (परमेष्ठियो मे) स्थित प्रत्येक विशेषण गुण को प्रधानता देकर उनका ध्यान किया जाय तो भी एकाग्रता साधी जा सकती है। यह एकाग्रता द्रव्य-नमस्कार को भाव-नमस्कार मे परिवर्तित करने का सामर्थ्य रखती है। सामान्य नियम ऐसा है कि स्थूल से सूक्ष्म, मूर्त से अमूर्त एव आलम्वन से निरालम्वन में जाया जाता है। विषय स्थूल, मूर्त एव परिचित हैं अत. सर्वप्रथम प्रशस्त विषयों के आलम्वन द्वारा क्रमश. सूक्ष्म अमूर्त एव अपरिचित मे पहुचा जा सकता है।

परमेष्ठि पाच है। विषय भी पाच हैं। विषय परिचित है, परमेष्ठि अपरिचित हैं। परिचित विषयो के आलम्वन से अपरिचित

परमेष्ठियों के स्वरूप का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार पॉच २ के जितने प्रशस्त जोड़े बन सकें उनका प्रत्येक का आलम्बन लेकर श्री पच परमेष्ठि के ध्यान मे तन्मय बना जा सकता है एवं इस तन्मयता द्वारा नमस्कार को भाव नमस्कार मे बदला जा सकता है।

पाच परमेष्ठियो मे स्थित पांच महाव्रत, पांच आचार, सम्यकत्व के पांच भूषण एवं धर्म सिद्धि के पाच लक्षण, मैत्री आदि भाव, क्षमा; आदि धर्म जो साधारण रोति से अपने से परिचित है उन्हे पाच २ की सख्या मे योजित कर पच परमेष्ठियो का विशुद्ध प्रणिधान हो सकता है जैसे कि अरिहतो मे स्यित अहिसा, सिद्धो में स्यित सत्य, आचार्यो मे स्यित अचौर्य, उपाध्यायो मे स्यित ब्रह्मचर्य एवं साधुओ मे स्थित अकिञ्चनता, इत्यादि।

अरिहतो मे अहिसा के साथ सत्य आदि गुण भी निहित है वैसे ही सिद्धो मे, आचार्यों मे, उपाध्यायो मे एवं साधुओ मे भी ये गुण निहित है तो भी ध्यान की सुविधा के लिए प्रत्येक में एक २ गुण अलग मानकर चिन्तन करने से ध्यान सुदृढ़ बनता है। इसी प्रकार सभी विषयो मे भी इसी क्रम का पालन करना चाहिए।

इस प्रणिधान पूर्वक किया गया नमस्कार भाव नमस्कार गिना जाता है एव उसके फलस्वरूप जीव को बोधि लाभ, स्वर्ग के सुख तथा परम्परा से सिद्धि गति के अनन्त एव अव्याबाध सुख भी मिल सकते हैं।

श्रद्धा रूपी स्नेह बहुमान रूपी वर्तिका से धन्य पुरुषो के मनोभवन मे प्रकाशित नवकार रूपी दीपक मिथ्यात्व रूपी अन्धकार को हर लेता है।

श्री नवकार में नवरस

साहित्य के क्षेत्र मे 'रस' एक महत्व की वस्तु है। काव्य शास्त्र मे भी उसे महत्व का स्थान प्राप्त है एव रस शास्त्र पर बडे-बडे विवेचन प्रस्तुत किये गये हैं। ये रस नव हैं एवं उनमे नवाँ रस 'शान्त' नाम का है। कितने ही आचार्य उसे रस नही मानते हैं एव उनके मतानुसार रसो की सख्या आठ हैं। कतिपय आचार्य आठ रसो के अतिरिक्त नवे शान्त रस को भी मानते है और पुन कितने ही आचार्य नवरसो के उपरान्त 'वात्सल्य' नाम के दसवे रस को भी स्वीकार करते है। श्री नमस्कार महामत्र मे ये रस किस प्रकार अन्तर्भाव प्राप्त करते हैं, यही विचार यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज 'वात्सल्य' रस को स्वतन्त्र रस नही मानते और शान्त सहित मात्र नव रसो को ही रस रूप मे स्वीकार करते हैं। उन नव रसो के नाम अनुक्रम से इस प्रकार हैं.

(१) शृङ्गार (२) हास्य (३) करुण (४) रौद्र (५) वीर (६) भयानक (७) बीभत्स (८) अद्भुत (९) शान्त। उनके प्रत्येक के विभाव अनुभाव एवं व्यभिचारी भाव काव्यानुशासन नाम की अनुपमकृति मे सविस्तार बताए गए है। नवो रसो के स्थायी भावो के नाम भी वहाँ कहे गए है। वे अनुक्रम से (१) रति (२) हास (३) शोक (४) क्रोध (५) उत्साह (६) भय (७) जुगुप्सा (८) विस्मय (९) शम हैं।

ये नौ स्थायीभाव प्रत्येक मनुष्य में जन्मजात रूप से विद्यमान है। अत. उन्हे स्थायी अर्थात् स्थिरभाव कहा गया है। ये स्थायी भाव जिन निमित्तो को प्राप्त कर अभिव्यक्त होते हैं उन्हे आलम्बन विभाव एव जिन निमित्तो से अभिवृद्ध होते हैं उन्हे उद्दीपन विभाव कहते है। इस अभिव्यक्ति एव वृद्धि के समय होती शरीर की विभिन्न

चेष्टाओ को सात्त्विक भाव अथवा अनुभाव कहा जाता है। उस समय अनुभव की जाती हुई अलग अलग मानसिक वृत्तियाँ व्यभिचारी अथवा सचारी भाव कही जाती है। इससे यह सिद्ध हुआ कि पूर्ण निमित्तों की उपस्थिति मे होते आन्तर-बाह्य अनुभवों का पुनः पुनः परिशीलन ही रस रूप में परिणीत होता है। यह रसानुभावन अनुभव काल मे अलौकिक आनन्द को प्रदान करता है अतः उसे 'ब्रह्मानन्दसहोदर' भी कहा जाता है। यहाँ ब्रह्म से तात्पर्य है आत्म-स्वरूप। उस आनन्द का सहोदर अर्थात् सहजन्मा, समान, भाई अर्थात् साक्षात् आत्म-स्वरूप के आस्वाद तुल्य जिसका अनुभव है उसे ब्रह्मास्वादसहोदर भी कहा जा सकता है।

केवल मानसिक भावो के आवेग को ही यहाँ रस नही कहा गया है किन्तु रसन-आस्वादन को रस कहा गया है। पृथक् पृथक् भावो के साथ उन भावो का अनुभावन करने वाली आत्मा का भी रसन-स्मरण जिसमे है वह रस है। कहा है कि "भावस्मरण रसः" अर्थात् भावो का स्मरण ही रस है तात्पर्य है मात्र आवेगो का अनुभव ही नही पर इन अनुभवो के स्मरणकर्त्ता आत्मा का अनुभव ही रस है। 'अहं क्रोधवानस्मि, अह शोकवानस्मि, अह भक्तिमानस्मि' आदि स्मरणात्मक अनुभव ही रस का रसत्व है। सक्षेप मे विभाव, अनुभाव एव व्यभिचारी भावो द्वारा अभिव्यक्त होता स्थायीभाव ही रस है।

यहाँ विभाव का अर्थ है विशेष कारण। उसमे दो भेद हैं आलम्बन विभाव एव उद्दीपन विभाव। जिन आलम्बनो को अर्थात् निमित्तो को प्राप्त कर रस की उत्पत्ति होती है उन्हे आलम्बन विभाव एव जिन निमित्तो की उपस्थिति मे रस की अभिवृद्धि हो उन्हे उद्दीपन विभाव कहा जाता है। दूसरे अनुभावो को सात्विक भाव भी कहते है। अधिकाशतया वे रसानुभव के समय होती विभिन्न प्रकार की शारीरिक चेष्टाए ही है। तीसरे व्यभिचारी भावो को सचारी भाव भी कहते हैं क्योकि वे प्रत्येक रस के अनुभवो मे एक जैसे नही रहते पर बदल जाने वाले होते हैं। काव्यशास्त्र मे प्रत्येक के हेतु, स्वरूप एव फल का विस्तृत वर्णन किया गया है। यहाँ तो

उनका सूचन मात्र कर श्री नमस्कार महामंत्र के स्मरण तथा जप के समय प्रत्येक रस का अनुभव किस प्रकार किया जा सकता है उसी का सक्षेप मे वर्णन किया जा रहा है।

शात रस रसाधिराज है। यह सभी रसो का राजा है। सात्विक भाव के प्रकर्ष के समय सभी रस शान्त रस मे परिणीत होते है। श्री नमस्कार महामन्त्र शान्त रस का भण्डार है, कोप है अथवा शान्त रस से भरा हुआ महासागर है। उसमे स्थित पाचो परमेष्ठि एकान्त शान्त रस से भरित अमृत कुण्ड के समान है, मूर्तिमान् शान्त रस के निर्झर है। शान्त रस के विभावो को, अनुभावो को और व्यभिचारी भावो को समझने से यह बात अधिक स्पष्ट होगी।

श्री काव्यानुशासन नाम के ग्रन्थ रत्न मे कहा है कि 'वैराग्यादि विभावो यमाद्यनुभावो धृत्यादि व्यभिचारी शमः शान्त' (अ० ३-सू० -५) अर्थात् वैराग्यादि विभावो से, यमनियमादि अनुभावो से और धृति, स्मृति आदि, आदि व्यभिचारी भावो से अभिव्यक्त होता तृष्णा क्षय रूप शम, शान्त रस है।

शान्त रस के आलम्बन विभाव रूप मे वैराग्यादि हैं और उद्दीपन विभाव मे सत्सगादि है, 'वैराग्य आदि' शब्द से वैराग्य के उपरान्त संसार भीरुता तथा समार का, मोक्ष का वास्तविक स्वरूप समझाने वाला तत्वज्ञान, संसार से पार गये वीतराग पुरुषो का परिशीलन, उनके परिशीलन से प्राप्त होते सद्गुण के विकास एवं सदाचार के लाभ रूपी अनुग्रह आदि ग्रहण करने चाहिए। सत्सग आदि शब्द से सत्संग के उपरान्त सत् शास्त्र का श्रवण, मनन एवं अध्ययन तथा तीर्थ क्षेत्र, देवस्थान, निर्जन अरण्य गिरि गुहा, पुण्याश्रम आदि लेने चाहिए। इस प्रकार के बाह्य-आभ्यन्तर निमित्तो के बल पर शान्त रस की उत्पत्ति एव अभिवृद्धि होती है।

यम-नियम आदि का पालन, समिति-गुप्ति आदि व्रत नियमो का सेवन, मूलगुण तथा उत्तर गुणों का धारण आदि अनुभावना के स्थान पर हैं इससे मन-वचन-काया की चेष्टाए विशुद्ध बनती है।

मति, स्मृति, धृति, निर्वेद, आदि व्यभिचारी भाव है इनसे तृष्णा क्षय रूपी शम रस चर्वणा को प्राप्त होता है और वारवार चर्वणा को प्राप्त हुआ शम शान्त रस रूप मे परिणमित होता है।

जहाँ यह शान्त रस होता है वहाँ सात्त्विक भाव को प्राप्त दूसरे आठ रस अपनी उच्च दशा मे विद्यमानता रखते है। इसी कारण से शान्त रस सभी रसो मे राजा कहलाता है। अन्य रसो का जब उच्चीकरण होता है तब प्रत्येक रस शान्त रस रूप बन जाता है। इन रसो का उच्चीकरण ऊर्ध्वीकरण अथवा सात्त्विकीकरण किस प्रकार हो एवं उस समय सभी रस किस प्रकार शान्त रस मे मिल जाते है यह बात समझने के लिए प्रत्येक रस के विभाव, अनुभाव एवं सचारीभावो सहित स्थायीभावो को भी समझना चाहिए। यहाँ नाम मात्र बताकर यह विवेचन करेंगे कि उन सब रसो का शात रस मे किस प्रकार अन्तर्भाव होता है।

शृङ्गारादि रसो के नाम ऊपर बता चुके है। अब यह देखेगे कि उनका प्रत्येक का स्थायीभाव क्या है? शृङ्गार का स्थायीभाव "रति", हास्य का स्थायीभाव, "हास", करुणा का स्थायीभाव "शोक", रौद्र का स्थायीभाव "क्रोध", वीर का स्थायीभाव "उत्साह", भयानक का स्थायीभाव "भय", बीभत्स का स्थायीभाव "विस्मय" है। रति से लगाकर विराग तक के स्थायीभाव प्रत्येक जीव मे विद्यमान रहते है। उन्हे प्रकट करने के लिए सामग्री के उपलब्ध होते ही वे अभिव्यक्त होते है। उदाहरणतया शृगार रस का स्थायीभाव 'रति' है एवं रति सयोग विषयक इच्छारूप है अत. नायक-नायिका, उनकी चेष्टा तथा दूसरे निमित्त मिलते ही शृङ्गार रस का प्रादुर्भाव होता है। उसका ऊर्ध्वीकरण करना हो तो आलम्बन तथा उद्दीपन विभाव बदल देने चाहिए। नायक-नायिका और उनकी चेष्टाओ के स्थान पर पच परमेष्ठि भगवन्त एवं उनकी उदात्त प्रवृत्तियो को देखने अथवा स्मरण करने के साथ ही उनका सयोग विषयक इच्छा रूपी रतिभाव उद्दीप्त होता है फलस्वरूप पच परमेष्ठि के विरह काल मे उनका ससर्ग करने की इच्छा रूप एव ससर्ग काल मे उनकी सेवा करने की इच्छा रूप उच्च-कोटि का शृङ्गार रस अनुभूत किया जा सकता है। उच्चकोटि का

यह शृंगार विषय सुखों की इच्छा रूप तृष्णा का नाश करने वाला होने से शान्त रस से अभिन्न है।

इस प्रकार जैसे शृंगार शान्त रस मे परिणमित होता है वैसे ही दूसरे सभी रस उनकी उच्चावस्था मे शान्त रस रूप बन जाते हैं। जिस प्रकार विकृत वेष से उत्पन्न होता हास्य रस, ससार नाटक मे कर्म के सम्बन्ध से विविध प्रकार के वेष धारण करते एव विविध प्रकार के नाच नाचते ससारी जीवो की विडम्बनाओ को देखकर उत्पन्न होता हास्य रस यही शान्त रस मे परिणमित हो जाता है। इस प्रकार ये रस ससारी जीवो की इष्ट नाश एव अनिष्ट की प्राप्ति से होते चित्तवृत्ति रूप शोक का दर्शन करवाते हुए उच्चकोटि के करुण रस मे अभिव्यक्त होते है। यह उच्चकोटि का करुण रस शान्त रस का ही एक स्वरूप है। क्रोधादि षड्रिपुओ द्वारा होते अपकार से होता चित्तवृत्तियो का प्रज्वलन रौद्र रूप होते हुए भी यहाँ शान्त रस रूप बन जाता है। विषय कषाय को परास्त करने का तथा दीन-दुखियो की सहायता करने का उत्साह श्रेष्ठ वीर रस रूप बन शान्त रस रूप मे रूपान्तरित हो जाता है। कही आन्तर शत्रु हमे विवश नही करे अत. उनसे भय श्रेष्ठ कोटि के भयानक रस मे परिणमित हो शान्त रस मे मिल जाता है। इन्द्रियो के विषयो के प्रति तथा हाड़ मास के शरीर की अशुचिता के प्रति प्रकट होती जुगुप्सा उच्च-कोटि के वीभत्स रस मे परिवर्तित हो अन्त मे शान्त रस का ही एक प्रकार बन जाती है। विश्व की अनन्तता एव अगाधता, तथा धर्म एव उसके फल की लोकोत्तरता के साथ अचिन्त्यता के विचार से उत्पन्न होता विस्मय उच्चकोटि के अद्भुत रस मे परिवर्तित होकर शान्त रस का ही एक विभाग बन जाता है। इस प्रकार सभी रस उनकी उच्चावस्था मे शान्त रस रूप मे परिणमित होते हैं।

शान्तरस को वरण किये हुए श्री पंच परमेष्ठि भगवन्त इस प्रकार उच्च कोटि की रति, उच्च कोटि का हास, उच्च कोटि का शोक, उच्च कोटि का क्रोध, उच्च कोटि का उत्साह, उच्च कोटि का भय, उच्च कोटि की जुगुप्सा एवं उच्च कोटि के विस्मय आदि उच्च कोटि के शम स्वरूप बन शान्त रस का अनुभव करवाते हैं। सभी

प्रकार के उभय रस उनके अन्तिम स्वरूप मे शान्त-रस-रूप हो जाते हैं। अत: श्री पंच परमेष्ठि भगवन्त केवल शान्त रस रूप ही नही हो जाते हैं पर उभय कोटि के शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स एवं अद्‌भूत आदि रसो से भी भरित है ऐसा कहना लेश भी अयुक्त नही है।

परमेष्ठि भगवन्तो मे शृङ्गार रस है पर वह नायक नायिका का नही किन्तु अन्तरात्म भाव परमात्म भाव के बीच की रति प्रीति का है। हास्य रस है पर विदूषक के विकृत वेषादि के दर्शन से अद्‌भुत नही किन्तु भव नाटक की विडम्बना एव विषमता के दर्शन से उत्पन्न होता है। करुण रस है पर इष्ट नाश एवं अनिष्ट की प्राप्ति से होती मलीन चित्त वृत्ति वाला नही किन्तु इष्ट वियोग एव अनिष्ट सयोग से सदा सन्तप्त तथा शोकातुर जगत् को दु:ख पक और अज्ञानान्धकार से उद्धार करने के लिए है। रौद्र रस है पर बाह्य शत्रुओ से किये गये अपकार से होते मन के प्रज्वलन रूप नही किन्तु आन्तर शत्रुओ को समूल उच्छेद करने की प्रशस्त मनोवृत्ति रूप है। वीर रस है पर वह भी बाह्य युद्ध को जीतने के उत्साह रूप नही किन्तु लोकोत्तर कार्य मे उत्साह धारण करने रूप है। भयानक रस है किन्तु वह भी रौद्र दर्शनादि से होती अनर्थ की शका रूप नही किन्तु आन्तर शत्रु विवश न करे अत: उसकी सावधानी रूप है। बीभत्स रस है पर वह भी बाह्य अशुचि पदार्थो के देखने से नही किन्तु अशुचि स्वरूप स्व शरीर एव पाँच इन्द्रियो के बीभत्स विषयो की विपाक विरसता के दर्शन से हुई विरक्ति रूप है। अद्‌भुत रस है पर वह कोई बाह्य अपूर्व अर्थ के दर्शन से उत्पन्न चित्त का विस्मय रूप नही किन्तु आत्मा की एव कर्म की अचिन्त्य शक्ति के परिणाम स्वरूप उत्पन्न विश्व की अगाधता एव अनन्तता के दर्शन से उत्पन्न चित्त की प्रसन्नता रूप है।

परमेष्ठि भगवन्तो मे निहित शान्त रस इस प्रकार विषयो के भेद से अनेक रस रूप बन जाता है तथा उन शुद्ध रसो का आस्वादन करने वाले परमेष्ठि भगवन्तो को किया हुआ नमस्कार भी जिस प्रकार शान्त रस का अनुभव करवाता है वैसे ही उसके साथ अन्य उभय

कोटि के रसों का भी अनुभव करवाता है। "ध्याता ध्येय स्वरूप बनो" इस न्याय से शान्त रस का ध्याता भी शान्त रस बन जाता है। ज्यों-ज्यों नमस्कार का ध्यान बढता जाता है वैसे-वैसे नमस्कर्ता मे अपूर्व कोटि की रति, अपूर्व कोटि का हास, अपूर्व कोटि की करुणा, अपूर्व कोटि की रौद्रता, अपूर्व कोटि की वीरता, अपूर्व कोटि की भयानकता, अपूर्व कोटि की जुगुप्सा तथा अपूर्व कोटि की अद्भुतता प्रकट होती है। उनमे से एक भी वस्तु तृष्णा को बढाने वाली नही होती पर क्रमश: तृष्णा, वासना तथा इच्छाओ का क्षय कर अपूर्व कोटि की समता का अनुभव करवाती है, आत्मा को शान्त रस के अनन्त सागर में निमग्न कर देती है।

श्री परमेष्ठि नमस्कार करने रूप नवकार मन्त्र के स्मरण से वैराग्य, ससार भीरुता, जीवादि तत्त्वों का ज्ञान एवं वीतराग भाव का परिशीलन होता ही रहता है। पुन. उसके चिन्तन से अचिन्त्य शक्ति-युक्त परमेष्ठि भगवन्तो के अनुग्रह रूप सद्गुणों का विकास एव सदाचार का लाभ होता जाता है। साथ ही साथ रत्न त्रय रूप मोक्ष मार्ग की आराधना भी बढती जाती है। श्री पच परमेष्ठि के स्मरण के साथ ही पाप की जुगुप्सा एवं धर्म की परमार्थ परायणता की भावना भी जुडी हुई है। ससार की निस्सारता तथा मोक्ष मार्ग की सारभूतता का विचार भी श्री नमस्कार महामन्त्र के साथ ग्रथित है। श्री नमस्कार महामन्त्र के स्मरणादि काल मे अधिकांशतया पवित्र भूमि का संस्पर्श एव पवित्र पुरुषों का समागम रहता है। पुन. साधु धर्म के अनुरूप समिति-गुप्ति आदि सदाचारो का पालन तथा श्रावक धर्म के योग्य दान, पूजन तथा अणुव्रत-गुणव्रत का पालन भी होता है। धर्म श्रवण, शास्त्र स्वाध्याय, अध्यात्म चिन्ता आदि सद्गुण भी श्री नमस्कार मन्त्र के स्मरण के साथ ही अनुस्यूत होते है। ये सब अनुक्रम से शान्त रस के विभाग, अनुभाव एवं संचारी भाव बनकर तृष्णा क्षय रूप 'शम' नाम के स्थायी भाव का चर्वण करवाते हैं। यह चर्वणा पुन पुन: होने से शान्त रस का प्रादुर्भाव होता है।

इस प्रकार श्री नमस्कार महामंत्र के साथ नव रसो का सम्बन्ध एवं श्री नमस्कार के साधक को नमस्कार की साधना के द्वारा मिलते

नवों रसों के आस्वाद का अपूर्व लाभ यहाँ संक्षेप मे वर्णित है। इस का विस्तार बहुश्रुतो★ से समझना चाहिए।

> पुण्यानुबन्धी पुण्य के उदय से जिसे नमस्कार महामन्त्र की प्राप्ति होती है उसकी नरक गति तथा तिर्यञ्च गति का भ्रमण रुक जाता है और स्वर्गापवर्ग के द्वार उसके लिए खुल जाते है।

★क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भावो को वरण किये हुए श्री पच परमेष्ठि भगवन्तो मे शृङ्गारादि औदयिक भाव नही होते हुए भी इस लेख मे उनको योजना किस प्रकार की गई है ? इस प्रश्न का समाधान यह है कि औदयिक भाव के शृङ्गारादि रस परमेष्ठि भगवन्तो मे नही हैं तो भी क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव तो उनमे हैं ही तथा उन्हे ही यहाँ शृङ्गारादि रसो के नाम देकर घटित किया गया है। उन्हें बताने के लिये शृङ्गारादि रसो के साथ उच्च, उदात्त तथा सात्त्विक आदि शब्द रखे गये है। वस्तुत पच परमेष्ठियो मे अप्रशस्त भावो का लेशमात्र भी नही किन्तु उच्च कोटि के प्रशस्त भाव हैं। उन्हे ही अलग अलग रसो के नाम देकर बताया गया है। श्री अरिहन्त भगवन्त, श्री सिद्ध भगवन्त एव श्री केवलज्ञानी भगवन्तो मे मोह कर्म का समूल क्षय होने से प्रशस्त भावो की घटना उनमे "भूतपूर्व नय" से समझनी चाहिये। यह विषय गहन होने से बहुश्रुत महोदयो से विनयपूर्वक समझने का प्रयत्न करना चाहिये।

श्री नमस्कार महामंत्र का अपूर्व माहात्म्य

जिनसासणस्स सारो, चउदस पुव्वाण जो समुद्धारो ।
जस्स मणे नवकारो ससारो तस्स किं कुणइ ॥१॥

श्री जिनशासन का सार तथा चौदह पूर्व का उद्धार रूप नवकार मन्त्र जिसके मन मे है उसका संसार क्या कर सकता है? अर्थात् ससार के उपद्रव उसे किसी भी प्रकार की पीड़ा पहुंचा नही सकते हैं ।

जिस मनुष्य के अन्तर मे श्री नमस्कार महामत्र रमण करता हो, जिसने भाव से उसकी शरण स्वीकार की हो, उसे इस ससार के दु.ख लेशमात्र भी स्पर्श नही कर सकते । नमस्कार महामन्त्र रूप नौका मे बैठकर आत्मा निर्विघ्न रूप से संसार सागर से पार उतर सकती है ।

नवकार मन्त्र रूपी केसरी सिंह जिसके चित्त मे क्रीडा कर रहा हो उसे ससार के उपद्रव रूपी हाथी कुछ भी पीड़ा नही पहुँचा सकते । चारो गतियो के भयानक दु ख उससे दूर २ भागते हैं । श्री नमस्कार महामन्त्र महाशास्त्र माना जाता है । चौदह पूर्वधर महर्षि भी जीवन की अन्तिम वेला मे जब शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाती है एवं चौदह पूर्व का स्वाध्याय करने मे असमर्थ बन जाते हैं तब श्री नमस्कार महामत्र की शरण स्वीकार कर अन्तिम श्वास तक उसका स्वाध्याय करते रहते हैं क्योकि आराधित यह प्रभावक मन्त्र भवान्तर मे 'नियमा' उर्ध्वगति प्रदान करता है । ऐसा प्रभावक मन्त्र अपने मन मे क्यो नही उतरता ? कारण स्पष्ट है कि हम श्रावककुल मे जन्मे हैं और जन्मसे ही हमे महामन्त्र मिल गया है । मूल्यवान् वस्तु बिना मूल्य के मिल गई । अर्थात् इसका मूल्य मन मे रहा नही । गगा तट वासी के लिए गगाजल का क्या मूल्य ? पर दूर बसने वाले

गंगाजल के लिए तरसते हैं, प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करते हैं। हम भी आसानी से मिले मन्त्र का मूल्य समझ नही सकते अतः उसकी सच्ची आराधना के लाभ से वचित रह जाते है।

मूल्यवान वस्तु मिलना दुर्लभ है। मिलने के बाद सम्हालना उससे भी कठिन है, परन्तु यदि उस वस्तु का माहात्म्य, उसकी महत्ता समझ मे आ जाय तो उसे सम्हालने मे जरूर मेहनत की जाती है। दुष्काल के समय मे मनुष्य धान्य का महत्त्व जानता है अत. उसे सम्हालने मे बराबर मेहनत करता है। हमने भी जो महामन्त्र को प्राप्त किया है उसे यदि टिका कर रखना हो, तथा उसका यथार्थ लाभ लेना हो तो उसका माहात्म्य अवश्य जानना चाहिए।

नमस्कार महामन्त्र मन्त्राधिराज है। सभी शास्त्रो मे उसे प्रथम स्थान प्राप्त है। ससार रूपी रण क्षेत्र मे कर्म रूपी शत्रुओ के समक्ष लड़कर उन पर विजय प्राप्त करने का यह अमोघ अस्त्र है। साधको को आत्म शत्रुओ पर विजय दिलवाने का नवकार मन्त्र का सदैव का कार्य रहा है। अन्य सत्य मन्त्रो की उत्पत्ति नवकार महामन्त्र मे से ही होती है परन्तु उन मन्त्रो मे पच परमेष्ठि अधिकाशतया गुप्त रूप से हैं। नवकार-मन्त्र तो स्पष्ट रूप से पंच परमेष्ठियो का वाचक है। पहले उपद्रव निवारण हेतु अनेक महामन्त्र रचे हुए थे। 'उवसग्ग हर' स्तोत्र का स्मरण करते ही देवता सेवा मे हाजिर रहते थे। इस स्तोत्र का ऐसा माहात्म्य था। लोगो ने उसका दुरुपयोग करना शुरू किया एव क्षुद्र कार्यो के लिए देवो को बुलाकर कष्ट देना शुरू किया। इस हेतु स्तोत्र की कुछ गाथाये कम कर दी गई। इस स्तोत्र की प्रत्येक गाथा मे एक परमेष्ठि का अन्तर्हित समावेश है अतः इसी कारण से यह स्तोत्र प्रभावशाली बना एवं इसका खूब प्रचार हुआ। नमस्कार महामंत्र मे इन पाँचो परमेष्ठियो को प्रकट रूप से नमस्कार किया गया है अत. यह महान् प्रभाविक है।

इस महामन्त्र की उत्तमता का पार नही। उत्तम पुरुष उसकी आराधना कर सकते हैं। देव, मनुष्य, तिर्यञ्च एव नारकी मे उत्तम जीवो को इसकी प्राप्ति होती है। इस उत्तम मत्र को प्राप्त करने हेतु

हमें भी उत्तम बनना चाहिए। यदि हमे नवकार महामंत्र को साधना हो तो गुण प्राप्ति के मार्ग मे एक कदम आगे बढना चाहिए। अर्थात् मिथ्यात्व दृष्टिपन से सम्यक्‌दृष्टि पन मे आना चाहिए। यदि अपात्र को शास्त्र मिल जाय तो वह शास्त्र शस्त्र बन कर उसका ही अहित कर देता है। अयोग्य आत्मा के लिए यह मत्र लाभप्रद नही होता। कल्पवृक्ष के काल मे अथवा कलियुग के समय मे अथवा किसी भी समय मे यह मन्त्र योग्य आत्माओ को समान फल प्रदान करता है।

ससार ही दु.ख का मूल है। ऐसे संसार मे से मुक्त बन शाश्वत सुख प्राप्त करने हेतु नमस्कार महामन्त्र की शरण लेना आवश्यक है। असार ससार मे नमस्कार महामन्त्र सार है परन्तु इस सारभूत नवकार को साधने हेतु अपनी पापात्मा पर तिरस्कार प्रकट होना चाहिए। नवकार के नव पदो मे और अडसठ अक्षरो मे मन गूंथ देना चाहिए पर अपना मन तो हिरण जैसा चंचल है। ज्यो ज्यों मन को इस मन्त्र के साथ गूथने का प्रयत्न करते है त्यो त्यो यह दूर भागता जाता है। इस पर भी यदि प्रयत्न साधा जाय तो किसी न किसी दिन इस मन्त्र के अड़सठ अक्षरो मे मन गूंथा जा सकता है।

इस नमस्कार महामन्त्र मे निहित पच परमेष्ठि महिमावंत हैं अत. अपने लिए 'नमो' पद का अत्यधिक महत्त्व है। 'विषय प्राधान्यात्' अर्थात् विषय की प्रधानता से नमस्कार का विषय (Object) सर्वश्रेष्ठ होने से इसका फल भी बहुत अधिक है।

हम जितने प्रेम से अपने आप का, अपने माता पिता का अथवा प्रियतम का नाम सुनते है, सुनते ही रोमाच का अनुभव करते हैं उससे भी अधिक प्रेम और रोमाञ्च परमेष्ठियों के नाम और गुण सुनते ही होना चाहिए। जहाँ प्रेम होता है वहाँ रोमाञ्च होता है। जहाँ स्वार्थ होता है वहाँ प्रेम जागता है। माता पिता का पुत्र के प्रति प्रेम इसलिए होता है कि उसमे उनका स्वार्थ रहा हुआ है कि पुत्र बड़ा होकर उन्हे आराम देगा। वैसे ही नवकार मन्त्र मे कुछ स्वार्थ उत्पन्न हो तो उसके प्रति प्रेम जाग्रत हो सकता है।

वह स्वार्थ भौतिक नही पर आध्यात्मिक होता है ऐसा समझना चाहिए। कर्म-सम्बन्ध से प्राप्त होते पौद्गलिक सुख क्षणिक हैं। जिस प्रकार मनुष्य विष्ठा की तरफ नही देखता वैसे ही इन सुखों की तरफ महापुरुष दृष्टिपात भी नही करते है। ऐसे सासारिक सुखो के लाभ हेतु यदि नवकार को गिना जाय तो सच्चा नवकार हम से दूर ही रहेगा क्योंकि उसे खरे भाव से नही गिना गया है। उसका महत्त्व जाने विना ही गिना गया है अत मूर्ख के हाथ मे रही तलवार की तरह कही वह हमारा नाश न कर दे। "मुख मे राम बगल मे छुरी" के सिद्धांत सत्य धर्म की आराधना मे कभी नहीं चल सकेगे। यदि पचेन्द्रियो के विषयो का ही लक्ष्य हो तो मोक्ष मिलना कदापि सम्भव नही। ससार मे पाच विषयो का नाश नही किया जा सकता है, पर उसकी तरफ से अपने चित्त को मोड़ा जा सकता है एव विषयों के प्रति मोह तथा वासना का नाश किया जा सकता है। पच परमेष्ठियो का ध्यान इस हेतु अमोघ साधन है। परमेष्ठियो की आत्माओं का जो स्वरूप है, उस मूल स्वरूप को पहचान कर महामत्र का जाप करना चाहिए। यही जाप हमे अपने शुद्ध स्वरूप की पहिचान करवा सकेगा।

पार्श्वनाथ भगवान् अपने पूर्व के छठे भव मे एक तपस्वी महामुनि थे। एक समय वन मे काउस्सग्ग (कायोत्सर्ग) ध्यान मे थे। इतने मे वहाँ एक क्रुद्ध भील आ पहुचा। उसके क्रोध का कारण था कि मुनि उसकी तरह शिकार नही करते थे। इस प्रकार की दृष्टि वाले जीव भी संसार मे होते हैं। क्रोध के आवेश मे भील ने मुनि को वाण से वीध दिया। ससार के ऐसे खून का उस समय कौन न्याय करता? परन्तु कर्म रूपी वड़ा न्यायाधीश बैठा है। उन दोनों को उसने कर्मानुसार फल प्रदान किया। भील मरणोपरान्त मुनि हत्या के कारण सातवे नरक मे गया और नवकार मत्र का जाप जपते हुए मुनि मरने के बाद मध्यम ग्रैवेयक मे अहमिन्द्र रूप मे देव बने। नवकार मंत्र का ऐसा साक्षात्कार करने के कारण पार्श्व प्रभु ने अन्तिम भव मे काष्ठाग्नि मे जलते हुए सर्प के जीव को बचाया और नवकार सुनाकर धरणेन्द्र बनाया।

ऐसे परम पवित्र नवकार मंत्र की आराधना कर अपने भावी जीवन के लिए हमे तैयार हो जाना चाहिए।

शास्त्रकार कहते हैं कि नमस्कार महामंत्र धन प्राप्ति भी करवाता है। नवकार के प्रभाव से शिवकुमार का मृत्यु-भय टल गया और ऊपर से उसे सुवर्ण पुरुष प्राप्त हुआ जिससे सोने का एक जिन मंदिर बनवाया गया। इस महामंत्र के प्रभाव से फणिधर सर्प फूलों की माला बन जाता है। उसका साक्षात्कार श्रीमती के जीवन में देखने को मिलता है। इस मंत्र के प्रभाव से सती श्रीमती का अनिष्ट टल गया एवं पति की प्रीति की प्राप्ति हुई। यह मंत्र जहाँ कहीं भी है वहाँ सुख शान्ति, सम्पत्ति, आनन्द, मंगल तथा कल्याण प्रवर्तित हो रहा है। इससे आरोग्य भी प्राप्त होता है क्योंकि इसके जप मे मग्न रहने से आरोग्य मे बाधक मानसिक वृत्तियाँ अपने आप दूर हो जाती हैं।

अमृत सुवर्ण पात्र मे ही रह सकता है वैसे ही नवकार मंत्र रूपी अमृत सुवर्ण पात्र के समान उत्तम आत्मा मे ही रह सकता है। इक्षुदण्ड मे यदि टुकड़ो को अधिक चबाया जाय तो वे स्वादिष्ट लगते हैं वैसे ही नवकार रूपी गन्ने के दण्ड के पदों रूपी टुकड़ों एवं अक्षरो को ज्यों ज्यो श्रद्धा भक्ति तथा बहुमान पूर्वक एकाग्रचित्त से गिना जाय त्यों त्यों उसमे से प्रकट होते एक विलक्षण मिठास के आस्वाद को आत्मा अनुभव करती है।

जिस प्रकार भ्रमर मधु की अभिलाषा से दिन भर पुष्पो पर भटकता है और अन्त मे एक पुष्प मे ऐसा लीन हो जाता है कि उस पुष्प के मुकुलित होने पर भी मधुपान बन्द कर उड़ नही सकता है वैसे ही अपने मन भ्रमर को नवकार मंत्र के अक्षर रूपी पुष्पों पर यदि उडने दिया जाय तो निश्चय ही वह एकाध पद मे स्थिर होकर सच्चे मकरन्द का आस्वाद कर सकेगा।

नवकार मंत्र के अक्षरों को जगत् में प्रकाश प्रदान करने वाली रत्न ज्योति के समान मान कर स्मरण करना चाहिए। उसके

प्रत्येक अक्षर को और उसमें निहित भाव को महामन्त्र देवता मानकर उसका आराधन किया जाय तो स्वर्ग एवं मोक्ष दूर नहीं रह सकते ।

इस मंत्र में स्थित पंच परमेष्ठियों के स्वरूप को पहचान कर उनके गुणों का अपने स्वरूप के साथ मिलान करना चाहिए । पंच परमेष्ठियों में निहित ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप आदि गुण ही अपनी आत्मोन्नति के सच्चे साधन हैं और ये ही अपने परम साध्य हैं । सर्व मंगलों में प्रथम मंगल, सर्व कल्याण का परम कारण, देव दानव और उत्तम पुरुषों का सदैव स्मरणीय नमस्कार महामंत्र यदि हमारे हृदय में सदैव रमण करता रहे तो हम शीघ्र ही आत्मस्वरूप को पहचान कर उसे प्राप्त कर सकते हैं ।



श्री नमस्कार की मंत्रमयता के शास्त्रीय प्रमाण (शंका समाधान)

शंका शास्त्रो मे नवकार को पच मगल अथवा श्री पच मगल महाश्रुत स्कंध रूप में कहा गया है पर मत्र रूप मे नही कहा गया है।

समाधान कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी ने स्व-रचित योगशास्त्र मे परमेष्ठि नमस्कार को श्रेष्ठमत्र रूप मे प्रति-पादित किया है:

तथा पुण्यतम मत्रं, जगत्त्रितय पावनम् ।
योगी पचपरमेष्ठि-नमस्कार विचिन्तयेत् ॥१॥

अर्थ तीनो जगत् को पवित्र करने वाले पवित्रतम श्री पच परमेष्ठि नमस्कार मंत्र का योगी पुरुषो को ध्यान करना चाहिए।

योग शास्त्र प्रकाश ८

पुन आचार्य श्री सिद्धसेनसूरि आठ प्रकार प्रकाश वाले स्वरचित "श्री नमस्कार माहात्म्य" में कहते हैं

वश्य विद्वेषण क्षोम-स्तंभ मोहादिकार्यसु ।
यथाविधिप्रयुक्तोऽयं मत्र. सिद्धिं प्रयच्छति ॥१॥

अर्थ विधि पूर्वक प्रयुक्त यह मत्र वशीकरण, विद्वेषण, क्षोभण, स्तम्भन, मोहन आदि कर्मो के विषय मे सिद्धि को प्रदान करता है।

श्री नमस्कार माहात्म्य प्रकाश ६

शंका नवकार जैसे पवित्र मंत्र द्वारा मारण, मोहन वशीकर-णादि क्षुद्र क्रियाओ की सिद्धि कहाँ तक उचित मानी जा सकती है ?

समाधान क्रियाओं की अल्पता अथवा महत्ता उद्देश्य से मापी जा सकती है। वैषयिक स्वार्थ आदि के कारण वशीकरणादि क्रियाएं क्षुद्र हैं। शासन सेवा अथवा धर्म रक्षा आदि उच्च हेतुओ से होती वे ही क्रियाए क्षुद्र नही पर उच्च है। उत्तम मत्र का उपयोग अधम कार्य हेतु कोई करे तो उसकी हानि उसे होती ही है, परन्तु मत्र तो अपना कार्य करता ही है। यदि न करे तो मत्र नही गिना जा सकता एवं उसमे अचिन्त्य शक्ति नही मानी जा सकती।

शका कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्रसूरि के पूर्व के समर्थ आचार्यो ने नवकार को मत्र रूप मे कहा है ?

समाधान समर्थ शास्त्रकार एव टीकाकार आचार्य श्री हरिभद्रसूरि ने स्वरचित स्वोपज्ञ टीकायुक्त श्री "योगबिन्दु" ग्रन्थ के पूर्व-सेवा अधिकार मे कहा है.

मासोपवासमित्याहुर्मृत्युघ्न तु तपोधना.।
मृत्युजयजपोपेत परिशुद्ध विधानत. ॥

अर्थ एक मास के उपवास को तपोधनी महर्षियो ने मृत्युघ्न नाम का तप कहा है और मृत्युञ्जय नामक मत्र के जाप सहित उसे किया जाय तो वह सिद्धि का कारण बन जाता है। इस श्लोक की टीका मे ग्रन्थकार महर्षि ने श्री पच परमेष्ठि नमस्कार को मृत्युञ्जय नाम का मत्र कहा है।

शका मूल आगम मे नवकार को मत्र रूप मे बताया गया हो तो उसका प्रमाण दीजिए।

समाधान श्री जैन शासन मे चौदह पूर्व तथा समग्र द्वादशागी श्रुत-धर्मरूप होने से परम-मत्र-मय है। श्रुतज्ञान का उद्देश्य ही मोह और मिथ्यात्व रूपी विष का प्रभाव दूर करना है। चिरन्तनाचार्य विरचित श्री 'पचसूत्र' के पहले सूत्र मे श्रुत धर्म की स्तुति करते हुए कहा गया है कि

तहा सुरासुरमणुअपूईओ, मोहतिमिरसुमाली, रागदोसविस, परममतो ···· ···।

अर्थ सुर, असुर और मनुष्यों से पूजित मोह रूपी अन्धकार दूर करने हेतु सूर्य के समान और रागद्वेष रूपी विष को उतारने हेतु परममन्त्र तुल्य (श्रुत धर्म की मुझे शरण प्राप्त हो)

उसी ग्रन्थ के चौथे सूत्र मे साधु धर्म का स्वरूप बताते हुए कहा है कि

सुस्सुसाइगुणजुत्तो तत्ताभिनिवेसा विहिपरे परममंतोत्ति अहिज्जइ सुत्त .... ।

शुश्रूषादि बुद्धि के आठ गुण युक्त साधु तत्वाभिनिवेश से विधि मे तत्पर बन "यह परम मन्त्र है" ऐसा मानकर सूत्र का अध्ययन करना चाहिए ।

इस प्रकार समग्रश्रुत मन्त्रमय है और नवकार समग्रश्रुत का सार और चौदह पूर्व का उद्धार है अत उसकी मन्त्रमयता मे कुछ भी शका नही रहती । जिस मन्त्र मे भावविष को उतारने का सामर्थ्य हो वह द्रव्यविष को उतार सकता है और जिससे मोक्ष रूपी पुरुषार्थ की सिद्धि हो वह ससार के देव-मनुष्यादि के सुख प्रदान करे तो उसमे कोई आश्चर्य ही नही । नवकार द्वादशागी का सार है अत. मन्त्रमय है । उसके प्रत्येक अक्षर मे भावविष के साथ द्रव्यविष को उतारने का सामर्थ्य निहित है । सम्यक्श्रुत भावमगल का कार्य करता है और जिसमे भावमगल का कार्य करने की शक्ति हो उसमे द्रव्यमंगल का कार्य करने की शक्ति तो अदृश्य रूप से रहती ही है । इसी से 'श्रीदशवैकालिक,' 'श्री उत्तराध्ययन' और 'आवश्यक' आदि सूत्रो की गाथाओ, पदो और अक्षरो मे सुवर्णसिद्धि, रत्नसिद्धि और रस सिद्धि आदि सिद्धियो तथा आकाशगामिनी आदि विद्याए निहित हैं ऐसा स्पष्ट प्रतिपादन किया हुआ है, उसके जानकर जान सकते हैं ।

श्री नवकार द्वादशागी का सार है अत: मगलमय और मन्त्रमय तो है ही साथ ही मगल के और मन्त्र के सभी कार्य उससे सिद्ध होते हैं । यह बात 'लोगस्स', नमुत्थुण और 'उवसग्गहर' आदि के कल्पो के साथ नवकार के कल्पो से भी सिद्ध होती है । "दशम विद्या प्रवाद" नाम के पूर्व मे अनेक विद्या और मन्त्र निहित है वैसे ही द्वादशागी के

उद्धार रूप श्री नवकार मे भी अनेक विद्या और मंत्र छिपे हुए हैं। वे साधक को ही प्रकट होते हैं। अन्य मंत्रो मे जहाँ मंत्रमयता और मंत्र विद्या से सिद्ध होने वाले वशीकरणादि कार्य करने की शक्ति निहित है वही श्री नवकार में मत्रमयता के साथ मगलमयता और मंत्र से सम्भव कार्यो को करने की शक्ति भी है। यह नवकार की विशेषता है। कहा है कि

यदि तावदसौ मत्रः शिव दत्ते सुदुर्लभम्।
ततस्तदनुषगोत्थे गणना का फलान्तरे ॥१॥

अर्थ यदि यह नवकार मत्र अति दुर्लभ मोक्ष को भी प्रदान करता है तो उसके अनुषग से प्राप्त होने वाले दूसरे फलो का तो कहना ही क्या? अर्थात् अवश्य प्रदान करता है।

इन उदाहरणो से यह प्रश्न निरर्थक हो जाता है कि नवकार को कब से एव किस आचार्य से मत्र रूप मे गिना गया है? नवकार मगलमय तो है पर मत्र मय भी है। अत. उसके आराधको को मत्र से होते कार्यो की सिद्धि हेतु अन्यत्र जाने की आवश्यकता नही। कहा है कि

उच्छेदं परविद्याना निमेषार्धात् करोत्यसौ।
क्षुद्रात्मना परावृत्तिवेध च विधिना स्मृत ॥१॥

अर्थ दूसरो के द्वारा प्रयोग की गई विद्याओ का अर्ध पल मात्र मे उच्छेद करने तथा तुच्छात्माओ द्वारा होते उपद्रवों का परावर्तन करने का सामर्थ्य विधि पूर्वक स्मरण किए हुए इस मंत्र मे निहित है।

इस प्रकार नवकार से उभय प्रकार के कार्यों की सिद्धि होती है अत उसे पूर्वाचार्यो ने मंगलमय और मत्रमय कहा है और इसी प्रकार हमे उस पर श्रद्धा रखनी चाहिए।

पुन. पूर्वधरो की प्रत्येक रचना मगलमय एव मत्रमय है दश पूर्वी और चौदहपूर्वी 'नियमा' सम्यक्दृष्टि होते हैं। श्री नवकार

को अर्थ से सभी तीर्थङ्करों एवं सूत्र से सभी गणधर भगवन्तों ने माना है अत. वह अर्थ से श्री तीर्थङ्करों की तथा सूत्र से गणधरो की रचना है। गणधर भगवन्त अवश्य ही चौदहपूर्वी होते हैं। तीर्थङ्कर भगवन्त केवलज्ञानी होते हैं। इसीसे उनकी रचना मगलमय तो होती ही है साथ ही यदि वह मत्रमय भी हो तो उसमे कोई अतिशयोक्ति नही। नवकार तो सर्वश्रुत का सार है अत. उसकी मगलमयता और मत्रमयता घनीभूत बनी हुई है। यदि अन्य शास्त्रो को समुद्र कहा जाय तो नवकार उसमे से निकला अमृत है। यदि अन्य शास्त्रो को क्षीर रूप मे कहा जाय तो नवकार नवनीत तुल्य है। अन्य शास्त्रो को रोहणाचल अथवा मलयाचल की उपमा दी जाय तो नवकार उसमे से उत्पन्न हुआ वज्ररत्न अथवा अमूल्य बावना (रक्त) चदन है।

शका विद्यमान आगम सूत्रो मे श्री नवकार को स्पष्ट रूप से मत्ररूप मे कहाँ कहा गया है ?

समाधान नवकार की मत्रमयता को सिद्ध करने वाला प्राचीन आगम-प्रमाण महानिशीथ सूत्र है। उसमे कहा गया है

नमो अरिहताण सत्तक्खरपरिमाणं अणतगमपज्जवत्थपसाहगं सव्वमहामतपवरविज्जाण परमवीअभूअ।

अर्थ 'नमो अरिहताण' सात अक्षर के परिमाण वाला, अनन्त-गम, पर्याय और अर्थ को प्रकर्ष पूर्वक साधने वाला तथा सर्व महामत्रो और प्रवर विद्याओ का परम वीजभूत है।

इस वात का समर्थन करने वाली एक प्राचीन गाथा यहा दी जा रही है :

पणव-हरिया-रिहा इअ मतह बीआणि सप्पहावाणि
सव्वेसिं तेसिं मूलो इक्को नवकारवरमतो ॥१॥

अर्थ—प्रणव (ओंकार) माया (ह्रीकार) और अर्हं आदि प्रभावशाली मंत्र बीज है, उन सबका मूल एक प्रवर नवकार है।

अर्थात् ॐ ह्रीँ अर्हँ आदि मन्त्र बीजों के मूल में श्री नवकार मन्त्र स्थित है। नवकार के प्रथम पद का विधिपूर्वक जाप करने वाले को आज भी यह अनुभव सिद्ध है।

इस एव अन्य प्रमाणो को देखते हुए नवकार की मत्र रूप मे कल्पना आधुनिक नही पर प्राचीन है अथवा अनादिकालीन है। मन्त्र शब्द की व्युत्पत्ति भी श्री नवकार की मन्त्रमयता को सिद्ध करती है।

'मननेन त्रायतेऽसौ मत्र:'

जिसका मनन करने से अथवा पुन. पुन. उच्चारण करने से रक्षण होता है वह मत्र है। नवकार के पदो का पुन. पुन. उच्चारण अथवा मनन करने से पाप रूपी विष का निवारण और धर्म रूपी मगल का आगमन होता है। इसी से भव भ्रमण रुक जाता है।

"मननात् त्रायतेऽसौ मन्त्र"

यह व्युत्पत्ति भी श्री नवकार की मत्रमयता को सिद्ध करती है। नवकार के जाप के द्वारा मन की संकल्प-विकल्प रूप अशुभ मनन क्रिया शमित हो जाती है। उससे आत्मा का अशुभ कर्म बन्ध से रक्षण होता है। इस प्रकार व्युत्पत्ति, रूढि और स्वानुभव आदि प्रमाणो से नवकार की मत्रमयता सिद्ध होती है।



प्रश्नोत्तर

प्रश्न बीजाक्षरो के बिना भी कोई मत्र, मंत्र बन सकता है ?

उत्तर मंत्रशास्त्र मे अनेक प्रकार के मत्र बताए गए हैं। उनमे बीजाक्षरो को भी मत्र माना है। इसके उपरान्त भी एकाक्षरी तथा अनेकाक्षरी मन्त्रो को भी मन्त्र रूप मे वर्णित किया गया है। उदाहरणतया षडक्षर मन्त्र, षोडषाक्षर मन्त्र तथा कुछ अक्षरों से अधिक संख्या वाले मंत्रो को 'मालामत्र' रूप मे भी बताया गया है। तदुपरान्त देवताओ के नाम और उनकी स्तुतियो को भी मत्र रूप मे गिना गया है। श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी महाराज ने योगबिन्दु नाम के ग्रथरत्न मे कहा है कि :

जपः सन्मत्रविषयः, स चोक्तो देवतास्तव ।
दृष्ट. पापापहारोऽस्माद् विषापहरणं यथा ।।१।।

अर्थ उसे ही जप कहा जाता है कि जिसका विषय मत्र हो और उसे ही देवतास्तुति रूप कहा गया है। अन्य मत्रों से जिस प्रकार विषापहार होता है वैसे ही देवता स्तुति रूप मत्र से पापापहार होता देखा गया है।

श्री हरिभद्र सूरिकृत—योगबिन्दु।

प्रश्न नमस्कार मत्र मे कोई बीजाक्षर क्यो नही है ? क्या महामत्रो मे उनकी अनिवार्य आवश्यकता है ?

उत्तर शास्त्रो मे कहा गया है कि प्रभावशाली बीजाक्षरो की उत्पत्ति नमस्कार मंत्र से हुई है। नमस्कार मत्र मे बीजाक्षर गर्भित रीति से निहित हैं। ऐसा नियम नही है कि सभी मत्रो मे बीजाक्षर प्रकट ही होने चाहिए। कहा है कि

पणव-हरिया-रिहा, इअ मतबीयाणि सप्पहावाणि ।
सव्वेसि तेसि मूलो, इक्को नवकार वरमतो ।।१।।

अर्थ प्रणव-माया-अर्हं आदि प्रभावशाली मन्त्र बीजो का उत्पत्ति स्थान एक नवकार ही श्रेष्ठ मत्र है ॥१॥

प्रश्न ।मस्कार के आदि अक्षरो मे 'असिआउसा' गूथे हुए है क्या। उनको बीजाक्षर माना जा सकता है ?

उत्तर—नमस्कार के आदि अक्षरो से बना 'असिआउसा' को स्वतंत्र मत्र माना गया है उन्हे बीजाक्षरो के रूप मे वर्णित किया गया हो इसकी जानकारी नही है।

प्रश्न ।मस्कार के आदि अक्षरो से 'असिआउसा' बनता है पर ॐ किस प्रकार बनता है ? सिद्धो का 'सि' नही लेने पर 'अशरीरी' शब्द का 'अ' लिया जाता है अर्थात् वह मूल शब्द नही पर पर्याय शब्द हुआ। इस प्रकार पर्याय शब्द उचित गिना जाता है ?

उत्तर ॐकार लोक मे परमेश्वर वाचक मत्र के रूप मे प्रसिद्ध है और यह माना जाता है कि उसके उच्चारण के द्वारा ईश्वर की उत्कृष्ट स्तुति होती है। ससार मे ॐकार की तरह जैनागमो मे महामंत्र रूप स्थान नवकार को प्राप्त है अत. ॐकार द्वारा परमेश्वर की तरह पाचो परमेष्ठियो का स्मरण नवकार द्वारा सम्भव है। यह बात बताने के लिए आदि अक्षरो की सधि कर उसे सिद्ध कर बताया गया है ? सधि करने मे सिद्ध और साधु के पर्याय शब्द अनुक्रम से 'अशरीरी' और मुनि को लेकर उसके आदि अक्षर 'अ' और 'म्' को लिया गया है। ऐसा कर केवल शब्द से नही पर अर्थ से ॐकार पच परमेष्ठि वाचक सिद्ध किया गया है। इस प्रकार अर्थ को प्रधान बनाकर पर्यायवाचक शब्द की सधि करने मे मत्र-शास्त्र की दृष्टि से कोई विरोध नही होता। शब्द शास्त्र की दृष्टि से "गौण प्रधान न्याय" अर्थात् किसी स्थान पर शब्द की तो किसी स्थान पर अर्थ की प्रधानता की उपयोगिता होती है।

प्रश्न मत्र की आराधना से देवता प्रसन्न होकर काम करते है। इस मत्र की आराधना से कौनसे देव प्रसन्न होते हैं ?

उत्तर—श्री सिद्धसेनसूरिजी रचित संस्कृत 'शक्रस्तव' के उप-संहार मे कहा है कि इस प्रकार अरिहंत परमात्मा की स्तुति द्वारा चारो निकायों के देव प्रसन्न होते हैं और पांचों प्रकार के भूत अनुकूल बनते हैं। दुष्टो का क्षय और शिष्टो की जय तथा ऐहिक आमुष्मिक अनेक प्रकार के फल मिलते हैं। अत मे कहा है कि जिन स्तुति परम मत्र रूप है। अत उनके स्मरण के द्वारा आराधको को सभी प्रकार की अनुकूलताएँ प्राप्त होती हैं।

प्रश्न जहाँ देवता के प्रसन्न हुए बिना ही काम होता है वहाँ कौनसा नियम काम करता है?

उत्तर उसके पीछे वस्तु स्वभाव का नियम काम करता है। कहा है कि :—

वत्थुसहावो एसो, अउव्वचिंतामणी महाभागो।
थोऊणं तित्थयरे, पाविज्जइ बोहिलाभोत्ति ॥१॥

अर्थ यह वस्तु का स्वभाव है कि अचिन्त्य चिन्तामणि महा-भाग तीर्थंकर भगवन्तो की स्तुति करने से बोधिलाभ की प्राप्ति होती है।

पुन. कहा है कि

भत्तीइ जिणवराण खिज्जंति पुव्वसंचिया कम्मा।
गुणपगरिसबहुमाणो कम्मवणदवाणलो जेण ॥१॥

अर्थ जिनेश्वरो की भक्ति द्वारा पूर्व संचित कर्म विनष्ट होते हैं। गुण प्रकर्ष का बहुमान, कर्म रूपी वन को जलाने हेतु दावानल के समान है।

प्रश्न—नमस्कार महामंत्र से क्या चमत्कार सम्भव है?

उत्तर यहाँ चमत्कार का अर्थ है इसी जन्म मे मिलने वाले फल। यदि यह अर्थ लिया जाय तो नमस्कार की विधि पूर्वक आराधना से इस लोक मे अर्थ, काम, आरोग्य और अभिरति आदि

प्राप्त होते हैं। उसके प्रत्येक फल हेतु एक एक कथानक श्री भद्रबाहु स्वामीजी ने श्री 'आवश्यक निर्युक्ति' के मूल मे कहा है—

इह लोए अत्थ कामा आरुग्ग अभिरईअ निप्फत्ती।
सिद्धी अ सग्गसुकुल पच्चायाई य परलो अे ॥१॥

अर्थ प्राप्ति से यहाँ शिवकुमार को सुवर्ण पुरुष की प्राप्ति, काम सुख से सती श्रीमती के लिए सर्प को फूल माला बनना और पति का प्रेम प्राप्त करना, आरोग्य से जिनदास सेठ का उदाहरण और अभिरति से भील एवं भीलनी का कथानक गृहीत किया जा सकता है। वर्तमान काल मे भी नमस्कार के आराधको को अपनी श्रद्धा एव भक्ति के प्रमाण मे प्रत्यक्ष फल मिलने के अनेक उदाहरण विद्यमान है। उत्कृष्ट श्रद्धा और भक्ति से नवकार गिनने वाले को अभी भी तत्काल स्व अभीष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट का निवारण होता है। कहा है कि :

थभेइ जल जलण चिंतियमित्तोवि पच नवकारो।
अरि-मारि-चोर-राउल-घोरुवसग्ग पणासेइ ॥१॥

अर्थ चिन्तन करने मात्र से पच नवकार, जल और अग्नि को रोक देता है। शत्रु, महामारी, चोर तथा राज्य सम्बन्धी घोर विघ्नों का नाश भी यही मत्र करता है।

प्रश्न श्री मानतुगाचार्यजी ने नमस्कार से क्या चमत्कार किए?

उत्तर महाप्रभावक श्री भक्तामर स्तोत्र के रचयिता श्री मानतुगसूरिजी ने ४४ श्लोको द्वारा ४४ शृखलाओ के बन्धन तोड़ दिए थे। आज भी भक्तामर स्तोत्र का कल्पानुसार प्रत्येक श्लोक का मत्र और विद्या का विधिपूर्वक आराधन करने वाले को चमत्कारिक रीति से फल मिलते है। उदाहरणतया श्री भक्तामर के पाँचवें काव्य का प्रतिदिन १०८ बार ६ मास तक अखड ब्रह्मचर्य पूर्वक स्मरण करने वाले को वाग्लब्धि और बुद्धि की वृद्धि होती अनुभव होती है।

प्रश्न क्या श्री नमस्कार की ध्यानविधि आगम मे बताई गई है ?

उत्तर ध्यान विधि के ग्रथों मे श्री नवकार मत्र की ध्यान विधि पाई जाती है और वह आगमोक्त है। श्री योगशास्त्र आदि ग्रथो मे कहा गया है कि 'विद्या प्रवाद' नाम के दसवे पूर्व से श्री वज्रस्वामी आदि पूर्वधर महापुरुषो ने उस विधि को उद्‌धृत किया है।

प्रश्न श्वेताम्वर तथा दिगम्वर सम्प्रदाय मे नमस्कार की ध्यानविधि के सम्बन्ध मे मतैक्य है कि मत वैभिन्य ?

उत्तर श्वेताम्वर और दिगम्वर सम्प्रदाय की ध्यान विधि के मूल मे कोई खास भेद दिखाई नही देता। आचार्य शुभचन्द्राचार्य कृत "ज्ञानार्णव" और कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्रसूरि कृत "योग शास्त्र" मे पिण्डस्थ, पदस्थ आदि ध्यानो का स्वरूप समान रीति से बताया गया है। इस प्रकार दोनो सम्प्रदायो मे ध्यान विधि समान रूप से प्रचलित है। ध्यान के अधिकारी पुरुषो के लक्षण आदि भी दोनो सम्प्रदायो मे समान रीति से बताये गये है फिर भी श्वेताम्वर सम्प्रदाय मे ध्यान विधि के लिए साधक की योग्यता पर विशेष भार डाला गया है और प्रमत्त गुणस्थानक पर्यन्त निरालम्वन ध्यान का "श्री गुणस्थान क्रमारोह" आदि ग्रंथो मे स्पष्ट निषेध किया गया है। मात्र उसकी भावना भावित करने का आदेश दिया गया है। दिगम्वर सम्प्रदाय के 'परमात्म प्रकाश' आदि ध्यान ग्रथो मे निरालम्वन ध्यान पर विशेष ध्यान दिया जाता देखा जाता है और शुद्ध आत्म स्वरूप के ध्यान के लिए बारम्बार प्रेरणा दी जाती देखी जाती है।

प्रश्न चूलिका फल श्रुति है यह निर्विवाद है, उसकी गणना मन्त्र रूप मे किस प्रकार हो सकती है ? क्या इस प्रकार की किसी दूसरी फल श्रुति की गणना मन्त्र रूप मे होती है ?

उत्तर जिस प्रकार पर्वत का शिखर पर्वत से अलग नही होता

अथवा जिस प्रकार चोटी मस्तक से अलग नही होती वैसे ही मन्त्र की चूलिका मन्त्र से भिन्न नही होती। श्री दशवैकालिक और श्री आचारग सूत्र की चूलिकाएँ जिस प्रकार मूल ग्रन्थो से भिन्न नही वैसे ही श्री नमस्कार महामन्त्र की चूलिका भी श्री नमस्कार महामन्त्र से अलग नही। श्री महानिशीथ सूत्र मे श्री नमस्कार महामन्त्र को आठ अध्ययनात्मक पच-मगल-महाश्रुत स्कन्ध कहा गया है। उसमे पाँच अध्ययन मूल मन्त्र के और तीन अध्ययन चूलिका के मिलाकर आठ अध्ययन कहे गये है और प्रत्येक अध्ययन के एक एक आयविल को नमस्कार के उपधान मे अलग अलग करने के लिये कहा है। 'लोगस्स' सूत्र मे भी फलश्रुति के साथ ही चतुर्विशति स्तव की रचना है। लोगस्स के कल्प में फल श्रुति की गाथाओ को भी मन्त्र स्वरूप मानकर उसके कल्प और फलादेश बताए है।

प्रश्न नमस्कार मे से 'असिआउसा' विद्या का उद्धार हुआ है यह इसके पाँच पदो को पुष्टि देता है। यदि यह पूरा मन्त्र होता तो ए, स, म, प (चूलिका के आद्य अक्षर) भी इसमे सम्मिलित किये हुए होते—ऐसा नहीं लगता।

उत्तर—'असिआउसा' को स्वतन्त्र मन्त्र माना गया है। इसी प्रकार चूलिका के आदि अक्षरो को स्वतन्त्र मन्त्र नही माना गया है। परन्तु चूलिका के ३३ अक्षरो का 'कर्णिका सहित' बत्तीस पखुरियो का कमल बनाकर ध्यान करने का विधान श्री नमस्कार पजिका आदि ग्रन्थो मे मिलता है अर्थात् चूलिका के तेतीस अक्षरो को मन्त्र स्वरूप माना गया है यह सिद्ध होता है।



मंत्र जप

शब्द-शक्ति के सदुपयोग अथवा दुरुपयोग से मनुष्य जगत् चिरकाल से परिचित है। आदिवासियों ने भी अपने गूढ क्रिया काण्डों में तथा प्रतीकों में इस शक्ति का उपयोग किया था। राजकीय प्रचार तथा व्यापारिक विज्ञापनो के इस युग मे इस शक्ति का दुरुपयोग किया गया है।

'शब्द' और 'भाव' एक दूसरे से मिले हुए हैं। ईश्वर के 'नाम' के साथ भी वैसे ही ईश्वर का 'भाव' जुड़ा हुआ है। अत. हमे यह समझना चाहिए कि शब्द-शक्ति का आध्यात्मिक जीवन में क्या महत्त्व है। यह महत्त्व स्वानुभव से ही जाना जा सकता है।

जिसे जप का अनुभव नही, उसे यह क्रिया निरर्थक एव यान्त्रिक लगती है। एव वह उसको तुच्छ गिनता है। वे बहुधा यह कहते पाए जाते हैं कि निश्चित शब्दों को बार २ गिनने से क्या लाभ ? सत्य तो यह है कि हमने अपने आपका ही परीक्षण नही किया है, एव हमारा समय तर्क वितर्क मे ही जा रहा है। हमारी जागृति का अधिकांश समय निरर्थक विचारो मे, इन्द्रियानुभव मे, स्मृति के बिखरे अंशो मे, समाचार पत्रो की खबरो मे, भय, अरुचि अथवा उत्तेजना मे बीत जाता है। यदि परीक्षण किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि हममे से ८० प्रतिशत लोग विचारो मे सुसंयोजित नही हैं, एवं केवल २० प्रतिशत लोगो का ही मन व्यवस्थित रूप से काम करता है। बाह्य सयोगो से हमारी विचार धारा बधी हुई है, आबहवा की अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियाँ एव मक्खी-मच्छरो का गूंजन हमे व्यग्र कर देता है। तो ऐसी है हमारी मन स्थिति तब ऐसे मे हम कैसे तो जप साधना करें, एवं कैसे ईश्वर के नाम मे रमे।

हम जैसे शब्दो का उच्चारण करते है वैसे ही वातावरण का प्रस्फुरण हम करते है। यदि युद्ध, केन्सर अथवा धन जैसे शब्दों का

हम दस हजार बार उच्चारण करे तो हमारे मन मे तदनुसार भावें उत्पन्न हो जायगे, वैसे ही हम ईश्वर का नाम स्मरण करे तो वैसे ही शान्त दान्त भाव हमारे मन मे उत्पन्न होगे। यह बात कल्पनामय नही, पर हमारे आध्यात्मिक जीवन का एक सत्य है। यह ईश्वर का नाम स्मरण हमें चिन्ता के समय व्यग्रता से उबार लेता है। जब हमें भगवान् के नाम की शक्ति का अनुभव होता है तो सद्भावो मे हमारी वृत्ति लगती है। भगवान् के नाम जाप के साथ उनके गुणों का चिन्तन भी महत्व रखता है, नाम जाप से हमारा मन स्थिर होता है, एव गुण सकीर्तन द्वारा आगे बढने की भूमिका बनती है।

हम बार २ जिस बात का स्मरण करते है वैसे ही भाव हमारे में स्फुटित होते है। मन्त्र की शुद्धता प्रभावशाली प्रयोजकता एवं अनुभव सिद्धता के परीक्षण के लिए उसे गुरु से ही ग्रहण करना चाहिए। गुरु से प्राप्त उस मत्र को गुप्त रखना चाहिए। माला मत्रजाप की सख्या एवं निश्चितता के लिए प्रारम्भ मे आवश्यक है बाद मे इस माध्यम को हटाया भी जा सकता है।

ईश्वर के नाम को वाणी द्वारा निरन्तर जपना, हृदय से स्मरण करना, आत्मा से तन्मयता प्राप्त करना, मानस चक्षुओं से सतत सान्निव्य अनुभव करना ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। साधक जब इन भावनाओ से रग जाता है, तब वह गहरे आत्म-तोष का अनुभव करता है, एव प्रार्थना उसके जीवन का अग बन जाती है। यह न भूलना चाहिए कि मात्र मौखिक प्रार्थना भी कभी न कभी हृदय की सच्ची भावना बन जाती है। अत. इन्हे अर्थहीन क्रिया ही नही समझना चाहिये। यह अर्थ हीन दीखती क्रिया सार्थक बन कर एक दिन आत्मा को नया आलोक, नया पोषण, एवं चिदानन्द प्राप्त करवाने में सहायक बनती है।

अत. भले ही आप धन्धे में लगे हुए हैं, अथवा प्रवास में हैं, हिसाब मिला रहे हैं, अथवा बैठे हैं। सभी समय, सभी स्थान पर सभी सयोगो मे प्रार्थना करना न भूलें। भले ही यह प्रार्थना क्षणिक ही हो पर कण २ से ज्यो घडा भरता है वैसे ही क्षण स्थायी यह प्रार्थना भी भावना की उच्चता से चिरस्थायी बन जायगी, एव एक दिन आप स्वयं अपने शुद्ध रूप मे प्रतिष्ठित हो जाओगे।

मंगल मार्ग दर्शन

जाप करने वाले साधक को परमेष्ठि भगवान् का स्वरुप गुरुओं के पास जाकर समझ लेना चाहिए और उसका वारम्वार चिंतन-मनन कर अपने नाम की तरह अथवा व्याकरण के सूत्र की तरह आत्मसात कर लेना चाहिए। अपना नाम लेते ही जिस प्रकार अपना समग्र स्वरूप ध्यान मे आ जाता है, तथा व्याकरण का सूत्र बोलते ही जिस प्रकार उसका अर्थ समझ मे आ जाता है वैसे ही जाप करते समय मत्र के अक्षरो का अर्थ अपने मन के समक्ष आकर खडा रहना चाहिए।

परमेष्ठि भगवन्तो का हम पर परम उपकार तथा उनके प्रति अपना ऋण कितना वड़ा है इस वात का ध्यान जप कर्ता को सतत रखना चाहिये।

"परमेष्ठि भगवन्तो का आलम्वन नही मिलने के कारण भूत-काल मे अनन्त भव भ्रमण करने पडे हैं उसका अन्त उनके आलम्वन से आ रहा है" इस वात का हर्ष अनुभव करना चाहिए।

जाप का समय, स्थान, वस्त्र और दूसरे उपकरण वे ही रखने चाहिए। वार वार उनमे परिवर्तन नही करना चाहिए एवं उनका दूसरे कामो में प्रयोग नही करना चाहिए।

जप को नियमित रूप से पवित्र और एकान्त स्थल मे पूर्व अथवा उत्तराभिमुख होकर करना चाहिए। जप मकान की सवसे नीचली भूमि पर अथवा तहखाने मे करना चाहिए।

जप करते समय काया और वस्त्रों की शुद्धि के साथ मन का और वाणी का पूरा मौन रखने का प्रयास करना चाहिए।

जाप शुरु करने से पहले 'वज्रपञ्जर स्तोत्र' द्वारा आत्म रक्षा करनी चाहिए।

जाप करने से पूर्व सभी जीवो के साथ मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य भावना का चिन्तन करना चाहिए। जाप पूर्ण होने के बाद भी इन चार भावनाओ का चिन्तन करना चाहिए।

जप का उद्देश्य पूर्व ही स्पष्ट और निश्चित कर लेना चाहिए। 'सर्व जीवराशि का हित हो" "सर्व जीवो को परमात्मशासन का रसिक बनाऊँ" यह उद्देश्य सर्वश्रेष्ठ है। "भव्य आत्माए मुक्ति को प्राप्त करें", "सघ का कल्याण हो", "मेरी आत्मा कर्म मुक्त हो", "विषय और कषाय की परवशता से मै शीघ्र मुक्त होऊँ" आदि उद्देश्यो मे से कोई भी प्रशस्त उद्देश्य निश्चित कर लेना चाहिए।

साधक को यह भी तय कर लेना चाहिए कि मेरे उद्देश्य की सफलता यदि होगी तो इस जप के प्रभाव से ही होगी अन्य किसी साधन से नही होने की। ज्यो-ज्यो सफलता मिलती जाय त्यों-त्यो समर्पण भाव का अधिक समायोजन करना चाहिए।

जाप का प्रमाण इतना निश्चित कर देना चाहिए कि जीवन के अन्त समय तक उससे कम सख्या का जाप कभी न हो। उससे अधिक जाप हो सकता है पर कम तो हो ही नही।

जप की सख्या कितनी हुई उसका ध्यान रखने के साथ-साथ जाप मे चित्त की एकाग्रता कितनी हुई इसका भी ध्यान रखना चाहिये।

हृदय रूपी पुस्तक के कोरे कागज पर ध्यान रूपी कलम द्वारा अपने नाम की तरह पच परमेष्ठि भगवन्त के नाम को एकाग्रतापूर्वक लिखना चाहिए। यदि प्रारम्भ मे ऐसी एकाग्रता नही आ सके तो ध्येय तो वही रखना चाहिए जिससे प्रतिदिन स्थिरता बढ़ती जाय।

जाप से अन्य कार्य हो या न हो पर हृदय शुद्धि हो ही रही है, और हृदय शुद्धि के परिणामस्वरूप बुद्धि निर्मल हो रही है ऐसा सतत विचार करना चाहिए। बुद्धि निर्मल होने से सभी पुरुषार्थों की सिद्धि होती है ऐसा शास्त्र वाक्य सदा स्मरण पथ मे रखना चाहिए। बुद्धि को निर्मल करने का ध्येय जाप द्वारा अवश्य पूरा होता है ऐसी श्रद्धा रखनी चाहिए।

जाप करने वाले साधक को विषयो को विष वृक्ष जैसा मानना चाहिए, ससार के समागमो को स्वप्नवत् देखना चाहिए एव अपनी वर्तमान अवस्था को ससार नाटक का एक अभिनय मानना चाहिए। शरीर को कारावास, घर को धर्मशाला और सम्पूर्ण ससार को अपवित्रता का स्थान मान कर अनित्यादि भावनाओ से अपनी आत्मा को भावित करना चाहिए।

श्री नवकार मत्र का जाप करने से आत्मा मे शुभ कर्म का आस्रव होता है, अशुभ कर्म का सवर होता है, पूर्व कर्म की निर्जरा होती है, लोक स्वरूप का ज्ञान होता है, सुलभबोधिता प्राप्त होती है और सर्वज्ञ कथित धर्म की भवोभव प्राप्ति करवाने वाले पुण्यानुबधी पुण्य कर्म उपार्जित होते है इत्यादि शुभ भावनाए चित्त मे निरन्तर रमा करे वैसा प्रयत्न करना चाहिए।



श्री नमस्कार महामन्त्र की लोकोत्तरता

जिसके पाठ मात्र से कार्य की सिद्धि हो उसे मन्त्र कहते हैं एव जिसको सिद्ध करने के लिये जप, होम, हवन आदि क्रियाएँ करनी पड़े उसे विद्या कहते है। शास्त्रो मे दूसरे प्रकार से भी विद्या एवं मन्त्र का भेद बताया है। कहा है कि जिसकी अधिष्ठाता देवता स्त्री हो वह विद्या एव जिसके अधिष्ठाता देव पुरुष हो तो वह मन्त्र है। पुन. मन्त्र क्या वस्तु है ? उसे विशेप रूप से समझाने के लिये शास्त्रकार महर्षियो ने कहा है कि मन्त्र अक्षर या अक्षरो का समूह है। अक्षर अथवा अक्षरो के समूह को छोड़कर मन्त्र दूसरी कोई वस्तु नही। पुन "निर्बीजमक्षरं नास्ति" अथवा "नास्त्यनक्षर मन्त्रम्" अर्थात् ऐसा कोई अक्षर नही कि जिसमे मन्त्र शक्ति नही हो अथवा अक्षर को छोडकर मन्त्र दूसरी कोई वस्तु नही। अक्षर अथवा अक्षर के समूहात्मक शब्द मे अपरिमित शक्ति निहित है वह आज के समस्त बुद्धिशाली वर्ग को मानना पडता है। गाना बजाना, हँसना रोना भी वातावरण पर जो प्रभाव डालते हैं वह भी वर्णात्मक नही, ध्वन्यात्मक शब्द शक्ति का ही एक परिचय है। रणसग्राम मे सुरीले वाद्य जो प्रभाव उत्पन्न करते हैं वह प्रभाव अन्य प्रसगो पर वजने वाले वाद्य पैदा नही कर सकते। आकाश मे मेघ गर्जना जो भाव पैदा करती है वह भिन्न होता है एव रण सग्राम मे तोपो की गर्जना जो भाव उत्पन्न करती है वह भिन्न होता है। जिस प्रकार ध्वन्यात्मक शब्दो का भिन्न भिन्न प्रभाव है वैसे ही वर्णात्मक शब्दो के उससे भी महान् भिन्न भिन्न प्रकार के प्रभाव माने गये है। ये प्रभाव अनुभव क्षेत्र मे प्रत्यक्ष होते है। एक व्याख्याता के मुख से निकले हुए उत्साहप्रेरक शब्द वातावरण को उमगपूर्ण बनाते हैं, उसी व्याख्याता के मुख से निकले निराशाजनक शब्द वातावरण को गमगीन बना देते है। विविध प्रकार के रसो का पोषण होने मे वक्ता अथवा लेखक की शब्द शक्ति के अतिरिक्त दूसरा किसका प्रभाव है ?

शब्द शक्ति अचिन्त्य है, वस केवल उसके प्रयोगकर्ता योग्य पुरुष की ही आवश्यकता होती है। किस प्रकार के शब्दो के मिलने से किस प्रकार की शक्ति उत्पन्न होती है उसके जानकार इस ससार मे दुर्लभ है परन्तु जब जानकार के हाथ मे अक्षर अथवा शब्द आते हैं तब वह विविध प्रकार की शब्द रचना द्वारा श्रोताओ के चित्त के सन्ताप एव दिल के दु खो को क्षण मात्र मे शान्त कर देता है। इसे इस दृष्टि से समझना चाहिए कि पूर्वधरो की देशनाशक्ति केवलज्ञानी के समकक्ष दीख पडती है। 'श्रु तकेवली' शब्द की एक व्याख्या ऐसी भी की गई है कि वे सर्वाक्षर सन्निपाती होते है, सभी अक्षरो एव उनके परस्पर मिश्रण से उत्पन्न होने वाले सभी अर्थो को वे जानते हैं एवं उनसे, उनकी उपदेशक शक्ति अमोघ वनती है।

मन्त्रो मे केवल अक्षरो की कार्यसाधक शक्ति होती है। इतना ही नही, उनमे दूसरी शक्तियाँ भी कार्य करती है और वह है मन्त्र के योजक की शक्ति, मन्त्र के वाच्य पदार्थो की शक्ति, मन्त्र योजक के हृदय की भावना तथा मन्त्र साधक के आत्मा मे स्थित मन्त्र शक्ति पर का भाव, अखण्ड विश्वास, निश्चल श्रद्धा आदि आदि। तात्पर्य यह है कि मन्त्र केवल अक्षर अथवा पदस्वरूप ही नही पर पद, पदार्थ, पद के योजक तथा पदप्रयोजक की भावनाओ एव शक्तियो का योग रूप है। मन्त्र की शक्ति इन चारो के अनुरूप होती है। मन्त्र का योजक क्लिष्ट परिणामी हो तो मन्त्र मारक वनता है एवं असक्लिष्ट परिणामी निर्मल वुद्धियुक्त हो तो उसका योजित मन्त्र तारक वनता है।

लौकिक मन्त्र शक्ति का प्रयोग मुख्य रूप से आकर्पण, वशीकरण, उच्चाटण, विद्वेपण, स्तम्भन, सम्मोहन आदि लौकिक कार्यो के लिए ही होता है। लौकिक मन्त्र शक्ति का उपयोग किसी व्यक्ति को अपनी तरफ खीचने, किसी को वश करने किसी प्रतिपक्षी को उडाने, किसी शत्रु का नाश करने, किसी को स्तम्भित करने अथवा किसी को मोहित करने के लिए होता है। उस मन्त्र की सफलता का आधार मन्त्र का प्रयोग करने वाले साधक की शक्ति आदि पर निर्भर है। यदि मन्त्र प्रयोजक सच्चा न हो परन्तु धूर्त हो तो मन्त्र निष्फल जाता है।

साधक सत्य हो किन्तु मन्त्र अशुद्ध हो, मन्त्र शुद्ध हो किन्तु उच्चारण अशुद्ध हो अथवा उच्चारण शुद्ध हो पर प्रयोजक का चित्त एकाग्र न हो अथवा श्रद्धा रहित हो तो भी मन्त्रशक्ति सफल नही हो सकती है। जहाँ ये सारी वस्तुएँ शुद्ध एव पूर्ण हो वही मन्त्र शक्ति पूर्वानुमानित कार्य पूरा कर सकती है।

इस दृष्टि से श्री नमस्कार महामत्र विश्व के समस्त मत्रो मे अग्रस्थान प्राप्त करता है। उसकी शक्ति अतुल है क्योकि लोकोत्तर महापुरुष ही उसके योजक है। अर्थ से तीर्थंकर एव सूत्र से गणधर उसके योजक है। उसका वाच्यार्थ लोकोत्तर महर्षियो को प्रणाम रूप है। उसके अक्षरो का सयोग एव पदो की रचना सरल एव स्पष्ट है। सभी आसानी से उसका पाठ अथवा उच्चारण कर सकते है एव उसका अर्थ समझ सकते है। उसका स्मरण तथा जाप मुख्यतया सम्यग्दृष्टि, ससार से नि स्पृह एव एकमात्र मुक्ति सुख के अर्थी उत्तम पुरुष ही करते है।

विश्व के अन्य मत्र जहाँ कामना करने से उसकी पूर्ति करते हैं वहाँ श्री नमस्कार महामत्र निष्काम भाव से जपने से समस्त कामना पूर्ण करता है। यह उसकी आश्चर्यकारकता है एव उसके प्रणेताओ की अपूर्व निष्काम भावना का परम प्रतीक है।

श्री नमस्कार मत्र की दूसरी विशेषता यह है कि उसके द्वारा जिन पुरुषो की आराधना की जाती है वे सब वीतराग एव नि स्पृह महात्मा हैं। विश्व के अन्य मत्रो के आराध्य देव ससारी, स्पृहा-वाले एव सरागी आत्मा है। श्री नमस्कार महामत्र के सर्वाधिक शक्तिशाली होने का कारण इस मत्र के अधिनायको की परम विशुद्धि भी है क्योकि सरागी की शक्ति कितनी ही अधिक क्यो न हो तो भी वीतरागत्व की अचिन्त्य शक्तिमत्ता एव प्रभावशालिता रूप सागर के सम्मुख वह एक बिन्दु जितनी भी नही होती।

श्री नमस्कार महामंत्र की तीसरी विशेषता यह है कि जहाँ अन्य मत्रो मे देवता अधिष्ठाता रूप मे है वहाँ इस मत्र मे देवता सेवक रूप मे रहते है। अर्थात् एक स्थान पर देवो का सेव्य रूप है एव

दूसरे स्थान पर देवो का सेवक रूप है। लौकिक मत्र मात्र देवाधिष्ठित होता है। उसका जाप करने से मत्र का स्वामी देवता जब वशीभूत होता है तभी वह मत्र सिद्ध हुआ गिना जाता है। परमेष्ठि नमस्कार महामंत्र मे इससे भिन्न है, उसका स्वामी होने की शक्ति किसी भी देवता मे नही है। देवता भी उसके सेवक बन कर रहते है। जो इस महामत्र की आराधना करते हैं उनको मत्र के प्रति भक्ति के वशवर्ती होकर देवता उन आराधको के भी सेवक बनकर रहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि नमस्कार महामत्र किसी देवता की शक्ति के कारण शक्तिशाली या प्रभावसम्पन्न नही पर श्री नमस्कार महामत्र की स्वय की शक्ति एव स्वयं का प्रभाव ही ऐसा अचिन्त्य है कि देवो को भी उसके वश मे रहना पड़ता है।

श्री नमस्कार महामंत्र की चौथी विशेषता यह है कि अन्य मंत्र जहाँ अत्यन्त गूढार्थक तथा उच्चारण मे क्लिष्टतर होते है वहाँ श्री नमस्कार महामत्र शब्दो से अति स्पष्ट एवं अर्थ से अत्यन्त सरल है। बुद्धिमान से लगाकर बालक पर्यन्त सभी कोई उसका पाठ सरलता से एव उसका उच्चारण शुद्ध रीति से कर सकता है तथा उनके अर्थ का ज्ञान भी आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

श्री नमस्कार महामत्र की इस सरलता एव स्पष्टता को देखकर बहुतो को उस पर अश्रद्धा एवं अविश्वास होता देखा गया है। उनकी यह मान्यता है कि मत्र तो गूढार्थक ही होना चाहिए एव उच्चारण मे भी क्लिष्ट होना चाहिए। परन्तु उनकी यह मान्यता उचित नही, जिस मंत्र का जैसा कार्य हो उसकी शब्द-रचना उसके अनुरूप होनी चाहिए। श्री नमस्कार महामत्र मुक्तिदाता है, परम पद को प्रदान करने वाला है अत उसकी रचना उसके अनुरूप होनी चाहिए। मोक्षाभिलाषी प्रत्येक जीव, फिर भले ही वह बालक हो, वृद्ध हो, स्त्री हो पुरुष हो, शिक्षित हो अथवा अशिक्षित हो, सभी के लिए एक समान उपयोगी रचना होनी चाहिए। श्री नमस्कार महामंत्र की सरलता एव स्पष्टता के पीछे उसके प्रणेताओं का यह गम्भीर एव उदात्त आशय है। उसके प्रकाशक अनन्त ज्ञान के भण्डार एवं अनन्त करुणा के निधान हैं अतः यह स्वाभाविक है कि

उसकी रचना ऐसी ही है कि सभी हितार्थी जीवो का एक समान हित हो सके। जिसका विषय समग्र विश्व के लिए एक समान उपयोगी हो, सभी का एकान्त हित करने वाला हो, उसकी रचना ऐसी होनी चाहिए कि जिसका उच्चारण सुखपूर्वक हो सके एव जिसका अर्थ बोध भी आबाल-गोपाल सभी के लिए विभ्रम रहित हो सके। कई मत्रो की शब्द रचना इतनी क्लिष्ट होती है कि जिनका उच्चारण करना कठिन होता है, किसी के बदले कुछ अन्य उच्चारण हो जाता है एव उस अशुद्ध उच्चारण के कारण अभिष्ट सिद्धि नही होती है, वहाँ नमस्कार महामंत्र मे यह कठिनाई नही है। उसका उच्चारण ऐसे स्पन्दन उत्पन्न करता है कि उसका साधक किसी भी प्रकार की सिद्धि के लिए योग्य सिद्ध होता है। श्री नमस्कार महा-मत्र की यह विशेषता अन्य मत्रो मे अवतरित नही हो सकती, उतर सकने की भूमिका भी नही, अत उसे सभी मत्रो मे शिरोमणि अथवा मत्राधिराज की उपमा सार्थक एव सुघटित है।

श्री नमस्कार महामत्र की पाचवी विशेषता यह है कि जहाँ अन्य मत्र, अनुग्रह-निग्रह, लाभ-हानि दोनो के लिए उपयोगी है वहाँ नमस्कार मत्र से किसी की हानि नही हो सकती, पर वह केवल लाभ मे ही हेतु बनती है।

इस मत्र की छठवी विशेषता यह है कि जहाँ अन्य मंत्र लौकिक पुरुषो पर आकर्षण, वशीकरण आदि करते हैं वहाँ नमस्कार लोकोत्तर पदार्थ का आकर्षण, वशीकरण आदि करता है कहा है कि

आकृष्टि सुरसम्पदा विदधति मुक्तिश्रियो वश्यता
मुच्चाट विपदा चतुर्गतिभुवा विद्वेषमात्मैनसाम्।
स्तम्भ दुर्गमनं प्रति प्रयतता मोहस्य समोहन,
पायात् पञ्चनमस्क्रियाऽक्षरमयी साऽऽराधना देवता ॥६॥

अर्थ यह पच परमेष्ठि नमस्क्रिया रूप अक्षरमयी आराधना रूप देवता तुम्हारा रक्षण करे कि जो सुरसम्पदाओ का आकर्षण है, मुक्ति रूपी लक्ष्मी को वशवर्ती करती है, चारो गतियों मे होने वाली

विपदाओं का उन्पाटन करती है, आत्मा के पापों के प्रति द्वेष करती है, दुर्गति मे पड़ते हुए जीवो को रोकती है एव वह मोह का भी समोहन करती है, शान्त करती है।

उपर्युक्त विशेषताओ के कारण श्री नमस्कार महामत्र सभी मत्रो में शिरोमणिभूत मत्र है एवं उसकी साधना दूसरे सभी मत्रों की अपेक्षा सरल होने से सभी को एक समान सुलभ है। अधमाधम जीव भी इस महामत्र के पवित्र अक्षर कान मे पड़ने मात्र से दुर्गम दुर्गतिरूपी गहनगर्त मे पड़ते उवर गए हैं। क्रूरातिक्रूर तिर्यंच भी इसके श्रवण मात्र से लघुकर्मी वन भवसमुद्र को तर जाते हैं। इस प्रकार की अद्‌भूत शक्ति होते हुए भी इतना अद्‌भूत सारल्य दूसरे किसी भी मत्र मे सम्भव नही अत. ज्ञानियो ने अपने मुख से इस मंत्रराज की महिमा गाई है। इस महिमा के मर्म को सभी लोग स्पष्ट रूप से समझ कर उसके आराधक वने यह एकमात्र इच्छा है।

卐

परिशिष्ट

श्री पंचपरमेष्ठि-नमस्कार-महामंत्र

नमो अरिहंताणं ॥१॥
नमो सिद्धाणं ॥२॥
नमो आयरियाणं ॥३॥
नमो उवज्झायाणं ॥४॥
नमो लोए सव्व-साहूणं ॥५॥
एसो पंच-नमुक्कारो ॥६॥
सव्व-पावप्पणासणो ॥७॥
मंगलाणं च सव्वेसिं ॥८॥
पढमं हवइ मंगलं ॥९॥

पद ९, सम्पदा (विश्रान्तिस्थान) ८, कुल अक्षर ६८

अर्थ अरिहंतो को नमस्कार हो ।
सिद्धो को नमस्कार हो ।
आचार्यो को नमस्कार हो ।
उपाध्यायो को नमस्कार हो ।
लोक मे विद्यमान सभी साधुओ को नमस्कार हो ।

इन पाचो को किया गया नमस्कार सभी पापो का समूल नाश करने वाला एव सभी मगलो मे प्रथम मगलरूप होता है ।

श्री आत्मरक्षाकर वज्रपञ्जराख्यं महास्तोत्रम्

श्री नमस्कार महामत्र का विधिपूर्वक जाप करने वाले महानुभाव को जाप के प्रारम्भ मे इस स्तोत्र द्वारा मुद्राओ सहित अपने शरीर

की रक्षा करनी चाहिए। मुद्राओं को गुरुगम से सीख लेना चाहिए। आत्म रक्षा पूर्वक जाप करने से अनेक लाभ होते हैं।

ॐ परमेष्ठिनमस्कारं, सारं नवपदात्मकम्।
आत्म-रक्षाकरं वज्रपञ्जराभ स्मराम्यहम् ॥ १ ॥

अर्थ नवपदस्वरूप जगत् का सारभूत यह परमेष्ठि नमस्कार आत्म-रक्षा हेतु वज्र के पंजर के समान है मैं इसका स्मरण करता हूँ।

ॐ नमो अरिहंताणं, शिरस्कं शिरसि स्थितम्।
ॐ नमो सव्वसिद्धाणं, मुखे मुखपटं वरम् ॥ २ ॥

अर्थ 'ॐ नमो अरिहताण' यह मत्र मुकुट रूप मे मस्तक पर स्थित है ऐसा जानना चाहिए (रक्षा करते समय मस्तक को हाथ से स्पर्श करना चाहिए)

'ॐ नमो सव्व सिद्धाण' यह मत्र मुख पर श्रेष्ठ वस्त्र रूप मे स्थित है ऐसा जानना चाहिए (बोलते हुए मुख को हाथ से छूना चाहिए)।

ॐ नमो आयरियाणं, अङ्गरक्षातिशायिनी।
ॐ नमो उवज्झायाणं, आयुधं हस्तयोर्दृढम् ॥ ३ ॥

अर्थ 'ॐ नमो आयरियाण' मत्र को अतिशायी अङ्गरक्षक रूप मे जानना चाहिए (बोलते हुए शरीर पर हाथ का स्पर्श करना चाहिए)।

'ॐ नमो उवज्झायाण' मत्र को दोनो हाथो मे स्थित मजबूत शस्त्र के रूप मे समझना चाहिए (बोलते हुए दोनो हाथो मे शस्त्र पकड़ने की चेष्टा करनी चाहिए)।

ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं, मोचके पादयोः शुभे।
एसो पंच नमुक्कारो, शिला वज्रमयी तले ॥ ४ ॥

अर्थ 'ॐ नमो लोए सव्वसाहूण' मत्र को पदत्राण के रूप में जानना चाहिए (बोलते हुए हाथो से दोनो पावो को छूना चाहिए)

'एसो पंचनमुक्कारो' मत्र को पादतल मे स्थित वज्र की शिला समझना चाहिए (बोलते हुए आसन को हाथ से स्पर्श करते हुए मन मे विचार करना चाहिए कि मैं वज्रशिला पर बैठा हूँ, अतः भूमि मे से अथवा पाताल लोक मे से मुझे कुछ भी विघ्न नही हो सकता)

सव्वपावप्पणासणो, वप्रो वज्रमयो बहिः ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, खादिराङ्गारखातिका ॥ ५ ॥

अर्थ 'सव्वपावप्पणासणो' मत्र को चतुर्दिक् स्थित वज्रमय दुर्ग जानना चाहिए (बोलते हुए यह विचारना चाहिए कि मेरे चारो ओर वज्र का कोट है। दोनो हाथो से चारो तरफ कोट की कल्पना करते हुए अगुली फिरानी चाहिए)।

'मगलाण च सव्वेसिं' मत्र को खैर की लकडी के अगारो की खाई समझनी चाहिए (बोलते हुए विचार करना चाहिए कि वज्र के कोट के बाहर चारो ओर खाई है)।

स्वाहान्तं च पदं ज्ञेयं पढमं हवइ मंगलं ।
वप्रोपरि वज्रमयं पिधानं देह रक्षणे ॥ ६ ॥

अर्थ 'पढम हवइ मगल' मत्र को दुर्ग के वज्रमय किवाड समझना चाहिए (बोलते समय विचारना चाहिए कि वज्रमय कोट पर आत्म रक्षा हेतु वज्रमय ढक्कन है। इस पद के अन्त मे 'स्वाहा' मत्र को भी समझ लेना चाहिए)।

महाप्रभावा रक्षेयं, क्षुद्रोपद्रवनाशिनी ।
परमेष्ठिपदोद्भूता, कथिता पूर्वसूरिभिः ॥ ७ ॥

अर्थ परमेष्ठी पदो से प्रगट हुइ महाप्रभावशाली यह रक्षा सर्व उपद्रवो का नाश करने वाली है, ऐसा पूर्वाचार्यो ने कहा है।

यश्चैवं कुरुते रक्षां, परमेष्ठिपदैः सदा ।
तस्य न स्याद्भय व्याधि राधिश्चापि कदाचन ॥ ८ ॥

अर्थ जो व्यक्ति इन परमेष्ठिपदो द्वारा निरन्तर आत्म रक्षा करता है उसे किसी भी प्रकार का भय, शारीरिक व्याधि और मानसिक पीडा कभी भी नही होती (यह मत्र सभी उपद्रवो का निवारण करने वाला है) ।

श्री महानिशीथ सूत्रोक्त नामग्रहण की विधि एवं फल

नामं पि सयलकम्मट्ठमलकलंकेहिं विप्पमुक्काणं ।
तियसिंदच्चियचलणाणं, जिणवरिंदाणं जो सरइ ॥ १ ॥
तिविहकरणोवउत्तो, खणे खणे सीलसंजमुज्जुत्तो ।
अविराहियवयनियमो, सोविहु अइरेण सिज्झिज्ज ॥ २ ॥

अर्थ सकल अष्टकर्मरूपी मल के कलंक से सर्वथा मुक्त एव देवेन्द्रो से पूजित चरण कमल वाले श्री जिनवरेन्द्रो के नाम का भी जो तीनो प्रकार के करण (मन, वचन, काया) द्वारा उपयोगपूर्वक प्रतिक्षण शील तथा सयम मे उद्युक्त रह कर और व्रत तथा नियम की विराधना से वच कर स्मरण करते हैं वे अल्प काल मे ही सिद्धिगति को प्राप्त करते हैं ।

(श्री महानिशीथ सूत्र अ० २)

आचार्य पुरन्दर श्री हरिभद्रसूरि विरचित श्री योग बिन्दु
नामक ग्रथ रत्न में
"श्री नमस्कार की महिमा एवं जप का विधान"

[१]

"अक्षरद्वयमप्येतच्छ्रूयमाणं विधानतः ।
गीत पापक्षयायोच्चैर्योगसिद्धैर्महात्मभिः ॥४०॥"

टीका अक्षरद्वयमपि किं पुनः पञ्चनमस्कारादीन्यनेकान्यक्षराणीत्यपि शब्दार्थः । एतत् योग' इति शब्दलक्षणं श्रूयमाणम्

आकर्ण्यमानम्। तथाविधाऽर्थानवबोधेऽपि 'विधानतो' विधानेन—श्रद्धासंवेगादि शुद्धभावोल्लासकरकुड्मलयोजनादि लक्षणेन। 'गीतम्' उक्त 'पापक्षयाय' मिथ्यात्वमोहाद्यकुशलकर्मनिर्मूलनायोच्चैरत्यर्थम्। कैर्गीतमित्याह—'योगसिद्धैः' योगः सिद्धो निष्पन्नो येषां ते तथा, तैर्जिनगणधरादिभिः 'महात्मभिः' प्रशस्त भावैरिति ॥४०॥

मूल का अर्थ ये दो अक्षर भी विधानपूर्वक सुनने मे आ जाएं तो अत्यन्त पाप क्षय के कारण होते हैं यह योगसिद्ध महापुरुषो ने कहा है।

टीका का अर्थ दो अक्षर भी अर्थात् पच नमस्कारादि अनेक अक्षरो का तो कहना ही क्या? 'योग' जैसे मात्र दो अक्षरो को ही, उसका वैसा अर्थ नही जानते हुए भी श्रद्धा-सवेगादि शुद्ध भावोल्लास पूर्वक और दो हाथ जोड कर श्रवण पथ मे आ जाए तो वे मिथ्यात्व मोह आदि अकुशल कर्म का आत्यन्तिक उच्छेद करने वाला होता है। इस प्रकार योग से सिद्धि प्राप्त जिनेश्वर गणधरादि महापुरुषो ने कहा है।

[२]

मासोपवासमित्याहुर्मृत्युघ्न तु तपोधनाः।
मृत्युञ्जयजपोपेतं, परिशुद्ध विधानतः ॥१३४॥

टीका 'मासोपवासं' मासं यावदुपवासो यत्र तत्तथा इत्येतत् 'आहुः' उक्तवन्तः। 'मृत्युघ्नं तु' मृत्युघ्ननामकं पुनस्तपः। 'तपोधनाः' तपः प्रधाना मुनयः। 'मृत्युञ्जयजपोपेत पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारादिरूपं मृत्युञ्जयसंज्ञमन्त्रस्मरणसमन्वितं। 'परिशुद्धम्' इहलोकाशंसादिपरिहारेण। 'विधानतः' कषायनिरोधब्रह्मचर्य—देवपूजादिरूपाद्विधानात् ॥१३४॥

मूल का अर्थ मृत्युञ्जय जपपूर्वक परिशुद्ध विधान पूर्वक किया हुआ मासोपवास का तप मृत्युघ्न अर्थात् मृत्यु को मारने वाला होता है यह तपोधन महापुरुषों का वचन है।

टीका का अर्थ—पंच परमेष्ठि नमस्कारादि रूप मृत्युञ्जय नामक मंत्र के स्मरण सहित 'परिशुद्ध' अर्थात् इहलोक के आशंसादि दोष रहित और विधान पूर्वक अर्थात् ब्रह्मचर्य देवपूजादिरूप विधि के पालन पूर्वक एक महिने पर्यन्त उपवास करने को महामुनियों ने मृत्युघ्न तप कहा है। (१३४)

[३]

आदिकर्मकमाश्रित्य, जपो ह्यध्यात्ममुच्यते।
देवतानुग्रहाङ्गत्वादतोऽयमभिधीयते ॥३८०॥

अर्थ धार्मिक पुरुष का प्रधान लक्षण (करजपादि रूप) जप हैं। यह भी अध्यात्म कहा जाता है। जिस देवता का जप किया जाय उन देवता के अनुग्रह का वह अंग है। इसीलिए अब जप को कहते हैं।

जपः सन्मंत्रविषयः, स चोक्तो देवतास्तवः।
दृष्टः पापापहारोऽस्माद्विषापहरणं यथा ॥३८१॥

अर्थ जप का विषय विशिष्ट मंत्र है। वह मंत्र देवता की स्तुति रूप होता है। देवता की स्तुति रूप विशिष्ट मंत्र के (पुनः पुनः परावर्तन रूप) जप से पाप का अपहार होता है। जिस प्रकार वैसे मंत्रों से (स्थावर जंगम) विषापहार प्रत्यक्ष दिखाई देता है। (३८१)

देवतापुरतो वाऽपि, जले वाऽकलुषात्मनि।
विशिष्टद्रुमकुञ्जे वा, कर्तव्योऽयं सतां मतः ॥३८२॥

अर्थ इस जप को देवता के सम्मुख अथवा स्वच्छ जल से

परिपूरित जलाशयो के सामने अथवा पत्रो, पुष्पो और फलो से झुके हुए वृक्षो से युक्त वन प्रदेश के अन्दर करने का सत्पुरुषो का आदेश है।

पर्वोपलक्षितो यद्वा, पुत्रंजीवकमालया।
नासाग्रस्थितया दृष्ट्या, प्रशान्तेनाऽन्तरात्मना ॥३८३॥

हाथ को अगुलियो पर अथवा रुद्राक्ष की माला के मणको पर नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि स्थिर कर अन्तरात्मा से शान्त होकर

विधाने चेतसो वृत्तिस्तद्वर्णेषु तथेष्यते।
अर्थे चाऽऽलम्बने चैव, त्यागश्चोपप्लवे सति ॥३८४॥

अर्थ मत्रों के अक्षरो के विषय मे, उसके अर्थ के विषय मे और प्रतिमादि आलम्बन के विषय मे चित्तवृत्ति को पिरोना चाहिए। जब चित्त की गति विपरीत हो, तब जप का त्याग करना चाहिए।

मिथ्याचारपरित्याग, आश्वासात्तत्र वर्तनम्।
तच्छुद्धिकामता चेति, त्यागोऽत्यागोऽयमीदृशः ॥३८५॥

अर्थ चित्त की व्याकुलता के समय जप का त्याग करने से मायाचार (अन्दर अशान्त एव बाहर शान्त) का त्याग होता है तथा विश्रान्ति होने से जप मे भली प्रकार से प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार शुद्धि की कामना से किया हुआ जप का त्याग भी अत्याग रूप ही है।

यथाप्रतिज्ञमस्येह, कालमानं प्रकीर्तितम्।
अतो ह्यकरणेऽप्यत्र, भाववृत्तिं विदुर्बुधाः ॥३८६॥

अर्थ जितने काल की प्रतिज्ञा की हो उतने समय तक जप अवश्य करना चाहिए। प्रतिज्ञा करने से जप के अतिरिक्त समय मे भी जप मे मनोवृत्ति कायम रहती है। ऐसा ज्ञानी पुरुष कहते हैं।

मुनीन्द्रैः शस्यते तेन, यत्नतोऽभिग्रहः शुभः ।
सदाऽतो भावतो धर्मः, क्रियाकाले क्रियोद्भवः ॥३८७॥

अर्थ जप के अतिरिक्त समय मे भी शुभ वृत्ति रहने से महामुनियो ने प्रतिज्ञा रूप अभिग्रह का विधान किया है। अभिग्रह द्वारा सदैव भाव रूप धर्म होता है और क्रियाकाल मे क्रिया करने से भी धर्म होता है (अत अभिग्रह की प्रशसा की है)।

श्री पंचपरमेष्ठि० महानमस्कार स्तोत्रम्

प्रतिष्ठित तम पारे, पारेवाग्वर्तिवैभवम् ।
प्रपञ्च वेधस पचनमस्कारमभिष्टुम ॥१॥
अहो पंचनमस्कार, कोऽप्युदारो जगत्सु य ।
सम्पदोऽष्टौ स्वय धत्ते, दत्तेऽनतास्तु ता सताम् ॥२॥
दत्तेऽनुकूलमेवान्यो भुक्तिमात्रमपि प्रभुः ।
एप पचनमस्कार, प्रतिलोम्येऽपि मुक्तिद. ॥३॥
नमस्कार-नरेन्द्रस्य, किमपि प्राभव स्तुम. ।
यदीयफूत्कृतेनापि, विद्रवन्ति द्विप क्षणात् ॥४॥
सिद्धयोऽप्यणिमाद्यास्ता नमस्कारमधिष्ठिता: ।
अष्टपष्ट्यक्षरात्मापि, यदसौ प्रणवेऽविशत् ॥५॥
शिरस्त्रादिधिया धीरे, स्वागदेशनिवेशिता ।
नमस्कृतेर्नवपदी, कटरे वज्रपञ्जर. ॥६॥
वर्ण्यता श्रीनमस्कारात्, कार्म्मणं किमतोऽधिकम् ।
यत्संप्रयोगत पाशुरपि सवनयेज्जगत् ॥७॥
नमस्कारं नुम सिद्ध, यत्पदस्पर्शपूतया ।
पद्याच्छादितसर्वाङ्ग, शान्तिमासादयेज्वरीम् ॥८॥
नववर्णी नमस्कृत्य कृती प्रतिपद जपेत् ।
विधत्ते विविधानिघ्नविघ्नाविग्रहनिग्रहम् ॥९॥
कर्णिकाष्टदलाग्रे हृत्पुडरिके निवेश्य य. ।
ध्यायेत्पचनमस्कार, ससार स तरेत्तराम् ॥१०॥
अष्टपष्टि यदीयस्य, वर्णानालिख्य भावत ।
कुड्यादावर्चयन् सम्यगेति शान्तेर्निशान्तताम् ॥११॥

आद्याक्षराण्यपीष्टार्थ-सिध्यै स्यु परमेष्ठिनाम् ।
बिन्दुरप्यामृतः किं न, नाशयेत् विषविक्रियाम् ॥१२॥

करांगुलीषु विन्यस्यार्हदादीन्ध्यानमानयेत् ।
प्रत्यूहपन्नगव्यूहव्यपोहे वैनतेयति ॥१३॥

गुरून् पचक्रमात् ध्यायन्, मुद्रया परमेष्ठिनाम् ।
गूढप्ररूढमचिरात्, कर्माण्यगी विमोचयेत् ॥१४॥

षोडशाक्षरमान् श्रद्धापरमः परमेष्ठिनाम् ।
प्राणी प्रणिदधानोऽप्युपवासफलमेधते ॥१५॥

विद्युज्ज्वालाग्नि-भूपाल-व्यालचोरारिमारिजम् ।
भयं वत्रयते पंचनमस्कारस्य सस्मृतौ ॥१६॥

आराध्य विधिवत्पञ्च-नमस्कारमुदारधीः ।
लक्षजापेन पापेन, मुक्तमार्हन्त्यमश्नुते ॥१७॥

ऐहिकफलमीप्सूनामष्टकर्मप्रसाधनी ।
मुक्त्यर्थिना च स्यादेषैवाष्टकर्मनिषेधिनी ॥१८॥

विपद्यमाभिचारस्योपादानस्याखिलश्रियाम् ।
स्मर्त्ता नमस्कृतेः स्वर्गिवर्गेण वरिवस्यते ॥१९॥
चतुर्दशाना पूर्वाणा, एषैवोपनिषत्परा ।
आद्या सकलविद्याना, बीजाना प्रकृति परा ॥२०॥
इय पथ्यदन पथ्य, परलोकाध्वयायिनाम् ।
परमास्त्र नृणा मोहराजयुद्धाय सज्यते ॥२१॥
प्राणी प्राणप्रयाणस्य, क्षणे ध्यायन् नमस्क्रियाम् ।
लभते सुगति नैकान्, पाप्मन कृतपूर्व्यपि ॥२२॥
नमस्कृति कृपाचित्ता, श्रोत्रयो प्राभृतिकृताम् ।
स्वीकृत्य पुण्यसध्रीचस्तिर्यंचोऽपि दिव ययु ॥२३॥
त्रिदण्डिन निगृह्यासि-यष्टिना श्रेष्ठिनन्दन ।
नमस्कारस्य महसाऽसाधयत्स्वर्णपुरुषम् ॥२४॥
स्मृत्वा पञ्च नमस्कार, प्रविष्टायास्तमोगृहम् ।
घटन्यस्तो महासत्या, पन्नगो पुष्पमाल्यभूत् ॥२५॥
नमस्कारेण सम्बोध्य, मातुर्लिगवनामर ।
प्राणत्राण स्वपरयोर्व्यधत्त श्राद्धपुगव. ॥२६॥

यक्षता हुण्डिक. प्रापत, मुकुलं चण्डपिङ्गल ।
इतस्तादृग्गुणस्फाति, सुदर्शन: सुदर्शने ॥२७॥
एष माता पिता स्वामी, गुरुर्नेत्र भिपक् सखा ।
प्राणस्त्राण मतिर्द्वीप शान्ति तुष्टिर्महन्मह ॥२८॥
निधय. सन्निधौ तस्य, धेनुरेनुपगामिका ।
भूभृतो भृतकास्तस्य, यस्य नैपद् हृदा हिरुक् ॥२९॥
नास्येयत्ता प्रभावाणा, क्रमवर्तितया गिराम् ।
मत्वायुष्टवान्न सर्वोऽपि न्यक्षेण भणितु क्षम ॥३०॥
सर्वविस्थौचितं सर्वश्रुतसार सनातनम् ।
परमेष्ठि महामत्र, भक्तितन्त्रमुपास्महे ॥३१॥
उ-चैर्यो जनलक्षमानविदितो बिभ्रत् सुवर्णात्मताम् ।
भव्यानन्दनभद्रसालमहिमा रोचिष्णुचूलाञ्चित ।
अस्तु श्रीजिनगेहभास्वररुचिस्थानं लसन्निर्जर,
सोऽय व: परमेष्ठिपञ्चकनमस्कार: सुमेरु. श्रिये ॥३२॥
माम्नायावयवा जिनप्रभगुरुर्यां सूत्रयामासिवान्,
दिव्या पञ्चनमस्कृति-स्तुतिमीमामानन्देनन्देन्मना ।
यस्यैपाञ्चति कण्ठसीमनि सदा मुक्तालता विभ्रमं,
तं मुञ्चत्यचिरेण विघ्ननिचया श्लिष्यन्ति च श्रीभरा. ॥३३

इतिश्री जिनप्रभसूरिकृत

॥ श्री पञ्चपरमेष्ठि-महानमस्कार स्तोत्रम् ॥

श्री जिनदत्तसूरि मण्डल के अभिनव प्रकाशन

		मूल्य
१–रत्नाकर पच्चीसी		
२–दादा गुरु इकतीसा (चतुर्थ आवृत्ति)–श्री गोपाल जैन		
३–दादा कुशल गुरु की अमर कहानी (द्वितीय आवृत्ति)–पूज्या श्री विचक्षणश्रीजी म० सा०		
४–प्रभु गुरु स्तवन (तृतीय आवृत्ति)	....	० ६०
५–आचार्य तुलसी का समन्वयात्मक मत्र सफल हो श्री कस्तूरमल बाँठिया		
६–इतिहास की खोज श्री चाँदमल सीपाणी		
७–Mahavir and Jainism Dr Radhakrishnan		
८–अभिनिवेश शिथिल होते ही सत्य की झाकी हो जाती है श्री कस्तूरमल बाठिया		
९ संवत्सरी श्री ऋषभदास राका		
१० सेठ मोतीशाह (गुजराती) ले० मोतीचद गि० कापड़िया अनुवादक श्री चाँदमल सीपाणी		
११–ससार बाजार (गुजराती) ले० मोतीचंद गि० कापड़िया अनुवादक श्री चाँदमल सीपाणी		
१२ नमस्कार चिंतामणि तृतीय आवृत्ति (गुजराती) ले० मुनिराज श्री कु दकु दविजयजी म० सा० अनुवादक श्री चाँदमल सीपाणी		३.५०
१३–जैसलमेर पच तीर्थी का इतिहास मुनिराज श्री प्रकाश विजयजी म० सा०	. .	२ ००
१४–धर्म व ससार का स्वरूप श्री गोपीचद धाड़ीवाल		२ ००
१५–जीवन दर्शन श्री गोपीचद धाड़ीवाल	.	१.००
१६–अध्यात्म विज्ञान योग प्रवेशिका श्री गोपीचद धाड़ीवाल	.	३ ००
१७–दादा गुरु चरित्र (चारो दादा सा० का सक्षिप्त जीवन)	...	० ६०
१८–विज्ञान और अध्यात्म मुनिराज श्री अमरेन्द्रविजयजी म० सा०	.	३ ५०
१९–Science of Happines (Shri G S Dhariwal)	..	१ ५०
२०–अध्यात्म कल्पद्रुमसार (मुनि सुन्दरसूरि) श्री हरिशचन्द धाडीवाल	.	६ ००
२१–जिनदर्शन, गुरुवदन एवं सामायिक विधि	..	०.२०